ॐ

साधु वेश में पथिक का संक्षिप्त परिचय

आपके शरीर का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में हुआ था। बाल्यावस्था ननिहाल में व्यतीत हुई। वहीं पर कुछ शिक्षा प्राप्त की। आरम्भ से ही आपके हृदय में ग्रामीण देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा जागृति थी। विश्वास था कि मंदिर में अथवा देवी-देवताओं के दर्शन से विद्या प्राप्त होती है।

बाल्याकाल से ही किसीसे उपदेश सुने बिना भगवान के नाम जप स्मरण में विश्वास था। आरम्भ से ही एक परमहंस अवधूत सन्त में श्रद्धा हो गई जो नग्न ही घूमते थे। कोई वस्त्र न रखते थे। स्नान के पश्चात् खाक लगा के जल सुखाते थे उसे विभूति कहते थे।

पूर्व जन्मों में संस्कारों से प्रेरित होकर भूमि, भवन, धन से वैराग्य हो गया और सब कुछ छोड़कर साधुवेष में विचरण करते हुए अनेक कवितायें लिखीं। एकान्त सेवी होने के कारण पद्य के साथ-साथ गद्य लिखना आरम्भ हुआ। लगभग पचास पुस्तकें छपीं। व्याख्यान के प्रति गीत गान के प्रति श्रोताओं का आकर्षण बढ़ता ही गया। मान-प्रतिष्ठा, पूजा भेंट से सदा विरक्त रहकर विचरण करते हुए आध्यात्मिक विचारों का समाजव्यापी प्रचार बढ़ता गया लेकिन विचारों की प्रधानता से विचारक समुदाय की वृद्धि होती गई। परमहंस संत सद्गुरूदेव की आप पर बहुत कृपा थी। आरम्भ में ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध थे फिर "साधुवेश में एक पथिक" नाम से कल्याण में लेख छपते रहे। पथिकोद्‌गार के तीनो भाग एक ही में संकलित पुस्तक में 285 गीत तथा उसी गीत का सार संत वचन के रूप में प्रकाशित है। दो बार छप चुकी है।

ज्ञान में देखो

लेखकः

साधु वेश में एक पथिक

ज्ञान में देखो

जहाँ ज्ञान में देख न पाते। वहीं मोह में हम फँस जाते।।

अन्धकार में रत्न समझ कर कंकड़ पत्थर ही चुनते हैं।
मूल्य न मिलता जब उनका कुछ तब हम अपना सिर धुनते हैं।
काल कर्म को दोष लगाते । जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

भूमि भवन तन धन जन मन को अपना मान सुखी होते हम।
जहाँ किसी का वियोग होता तब अत्यन्त दुखी होते हम।
अनजाने ही दोष बढ़ाते। जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

अविनाशी हम देह विनाशी यह जड़ है हम सत् चेतन हैं।
परम आत्मा सर्वाश्रय है यह है एक अनेकों मन हैं।
ऐसा गुरुजन हैं समझाते जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

दुखी दशा में त्याग और तप, सुखी दशा में सेवा कर लें।
आत्म ज्ञान से पूर्ण तृप्त हो नित्य प्रेम में प्रभु को भर लें।
इसमें भी हम देर लगाते। जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

सत् चेतन को भूले रहकर मुग्ध हो रहे जड़ काया में।
ममता के वश हम मर्कटवत नाच रहे मन की माया में।
भोगी बनकर कष्ट उठाते। जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

जो अज्ञान विनाशक है वह ज्ञान स्वरूप हमारा गुरु है।
जिससे सबको गुरुता मिलती हितकर यही सहारा गुरु है।
'पथिक' वही मनमुख कहलाते। जहाँ ज्ञान में देख न पाते।।

जागरण

ज्ञान में यह जागरण का समय है, सोते न रहना।
सुखद स्वप्नों में न हँसना, दुखद में रोते न रहना।।
मन विषय विष से सना है निर्विषय इसको बनाओ।
प्रेम में ही तुम सदा आनन्द के ही गीत गाओ।
कामना वश कर्म के अब बीज तुम बोते न रहना।।
शान्ति शाश्वत प्राप्त ही है अहंकार अशान्त रहता।
सत्य से दूरी नहीं है मन विमुख हो भ्रान्त रहता
क्षणिक सुख के लिये जीवन व्यर्थ अब खोते न रहना।।
तुम सदा ही मुक्त हो यदि अब कभी मन की न मानो।
रहो जग में मोह तज कर सभी प्रभु की वस्तु जानो।
व्यर्थ तन के संग से अब भिखारी होते न रहना।।
तीन गुण के साथ जग में प्रकृति सब कुछ कर रही है।
तत्व के आश्रित निरन्तर रूप अगणित धर रही है।
'पथिक' कर्ता पने का अब भार तुम ढोते न रहना।।

साहित्य मंगाने का पता

डा० जे० एल० सूरी
डा० ताराचन्द्र क्लीनिक
28 विधान सभा मार्ग
निकट बार्लिगटन चौराहा, लखनऊ
मो - 9415062640
फोन - 0522-4048520

❖ ❖ ❖

स्वामी नानानन्द
संत पथिक साधना आश्रम
हरिपुर, रायवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
फोन - 0135-2485725

डा० स्वामी अखिलेन्द
बंगाली टोला, बेलन बाजार
मुंगेर (बिहार)
फोन - 06344-222232

❖ ❖ ❖

अवधेश नारायण अग्रवाल
अग्रवाल गिफ्ट गैलरी
चौक, बहराइच (उ०प्र०)
फोन - 05252-237977
मो - 9336881137
9453017520

❖ ❖ ❖

भक्त बदर्स
श्री रामकृष्ण पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ - 226 018
फोन - 0522-6570333, 6531333 मो. - 9415418811

❖ ❖ ❖

मध्य प्रदेश के जो पाठक श्री स्वामी पाथिक जी का साहित्य लेना चाहें कृपया नीचे लिखे पते पर सम्पर्क करें:-
श्री विष्णु जी अग्रवाल
अग्रवाल बुक सेलर, एम.आई.जी.-21, दीन दयाल पुरम
पो०-खण्डुआ-पिन-450001(म०प्र०)
दुकान मो०- 9407455034 निवास: मो०- 09407457977

Website : www.pathikji.net

श्री परमात्मने नमः

ज्ञान में देखो

लेखक

साधुवेश में एक पथिक

संशोधित संस्करण : जून 2010

लागत मूल्य 15.00

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

मोबाइल: 9415062640

मुद्रक :

क्रियेटिव प्वाइंट एफ-25, जयहिन्द काम्प्लेक्स,

बी. एन. रोड, कैसरबाग, लखनऊ फोन : 0522-3012827

कहाँ ? क्या?

1.	ज्ञान में जागते हुए श्रवण की महिमा	1
2.	अज्ञान में मानते हो, ज्ञान में जानो	4
3.	ज्ञानी मृत्यु से शोकित नहीं होता	8
4.	ज्ञान में मूढ़ता से मुक्ति	9
5.	ज्ञान में स्वीकृतियों मान्यताओं से मुक्ति	11
6.	अनात्मा और आत्मा का विवेक	13
7.	भगवान दत्तात्रेय ने गाया है	22
8.	ज्ञान में प्रेम को पदार्थों से मुक्त करो	24
9.	ज्ञान में अन्धविश्वास से मुक्ति	30
10.	ज्ञान में जागो	37
11.	ज्ञान में सद्गुरु उपासना	40
12.	ज्ञान में पूर्णता से मुक्ति में ही उपासना की पूर्णता	48
13.	ज्ञान में सखासक्ति से मुक्ति	58
14.	ज्ञान में लोभ से मुक्ति	63
15.	ज्ञान में अहंकार से मुक्ति	65

श्री परमात्मने नमः

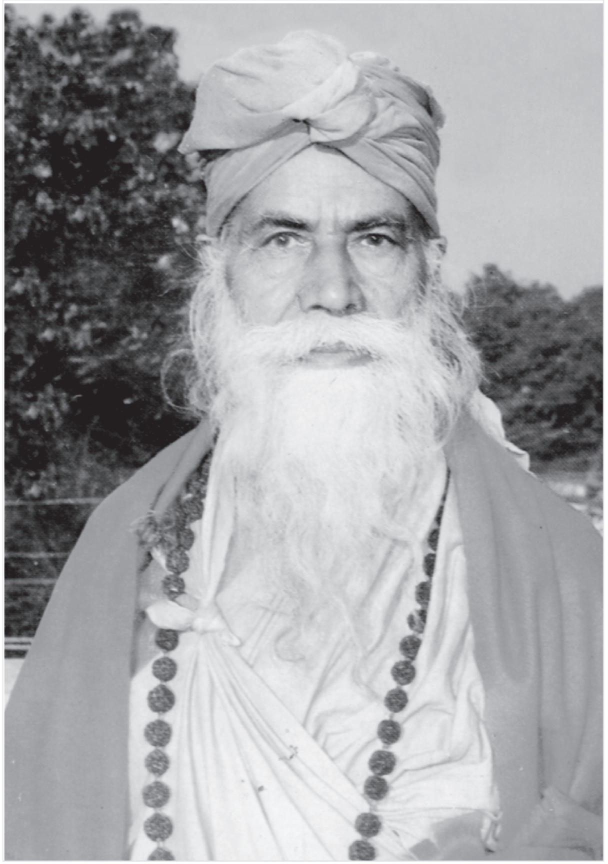

साधु वेश में एक पथिक

ज्ञान में जागते हुए श्रवण की महिमा

वस्तु श्रवण मात्रेण शुद्ध बुद्धिर्निरा कुलः।
नैवाचारमनाचारमौदास्यं वा प्रपश्यति।।

(अष्टावक्र)

यथार्थ वस्तु के श्रवण मात्र से ही शुद्ध बुद्धि वाला (श्रद्धावान) स्वस्थ (स्वयं में ही स्थित) आत्मस्थ हो जाता है वह किसी आचार, अनाचर, शुभ या अशुभ के द्वन्द्व में नहीं रहता। अशुद्ध बुद्धि ही द्वन्द्वग्रस्त होती है। प्रत्येक मनुष्य इसलिए मोही, लोभी और अभिमानी बना है क्योंकि जो सुना है वही मान लिया है और उन्हीं की बातें सुनकर मानी है जो स्वयं ही मोही, लोभी, अभिमानी और सुखोपभोग के कामी थे।

किसी तत्व ज्ञान के द्वारा सत्वर्चा सुनने का सौभाग्य बहुत ही सञ्चित पुण्यों के सुयोग से सुलभ होता है और विशेष पुण्य के सुयोग से ही हृदय में श्रद्धा जाग्रत होती है। यदि हृदय में श्रद्धा न हो तो कितने ही ब्रह्मज्ञानी मिलते रहें, स्वयं भगवान ही गुरु हो कर उपदेश दें, तब भी श्रद्धा रहित अशुद्ध बुद्धि में सदुपदेश का प्रभाव नहीं होता।

श्रद्धा भी हो और बुद्धि तीव्र न हो तब भी तत्व की बात समझ में नहीं आयेगी। जब दुख से अहंकार सन्तापित विषादग्रस्त होता है, श्रद्धा जागृत होती है और बुद्धि तीव्र होती है तभी उपदेश फलित होता है। सुनते-सुनते ही जिसे बोध हो जाये ऐसी विशुद्ध बुद्धि वाले जनक सरीखे श्रोता तो करोड़ो पुरुषों में कोई एक हो सकते हैं। वह भी अगणित जन्मों से यात्रा करते-करते जब कई जन्म साधना में भरपूर श्रम करते हुए अन्तःकरण को शुद्ध कर पाते हैं तब ऐसी विशुद्ध बुद्धि हो पाती है जिस बुद्धि से, जिस प्रज्ञा के श्रवण मात्र से ही सत्य तत्व का बोध हो जाता है, वह प्रज्ञा बुद्धि अनेक जन्म की निष्काम सेवा, तप एवं सन्त संगति से और समुचित सद्गुरु की उपासना से ही जागृत होती है।

यह भी गुरु निर्णय है कि जो साधना, पूजा, उपासना, सेवा, ध्यान और भजन करो वह अन्तःकरण की शुद्धि के लिए निष्काम प्रेम की पूर्णता के लिये करो और पूरी शक्ति पूरा मन लगाकर करो, कुछ भी बचा कर न रक्खो। करते-करते जब अपने से निराश हो जाओगे तब 'निर्बल के बल राम' घटित होंगे। तब जो होना चाहिए स्वतः व अनायास होगा। बिना कुछ किये भी न होगा। तुम्हारे करने से भी पूरा न होगा और जब तुम पूर्ण रूप से कर लोगे तब शान्त, शून्य और निष्क्रय होने पर सब हो जायेगा।

श्रवण की अद्भुत महिमा है। जन्म लेते ही आँखें रूप को देखती हैं लेकिन देखे हुए का जो ज्ञान होता है वह सुनने से होता है। हर एक जो कुछ बोलता है वह सुना हुआ बोलता है।

अपने को या दूसरों को जो कुछ मानता है वह सुनकार ही मान लिया है। कोई अपने को ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ऊंच-नीच हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, आर्य, सनातनी आदि जो मान रहा है वह सुनकर ही मान रहा है।

श्रद्धा होने पर जब हम सन्त सद्गुरु ज्ञानी को सुनते हैं तब यह ज्ञान हुआ कि मन से सुन कर मान लेना बालक के लिए बहुत सरल है परन्तु माने हुए को जानने का प्रयास करना बुद्धिमान विद्वान के लिये ही सम्भव है।

कराड़ों विद्वान ऐसे हैं जिन्हें यह ज्ञात नहीं है कि मानने तथा जानने में और प्रत्यक्ष ज्ञान दृष्टि से दर्शन में कितना अन्तर है।

यह भगवान का निर्णय है कि जिस ज्ञान में यथार्थ दर्शन होता है उस ज्ञान का अधिकारी वही होता है जो श्रद्धावान हो, साथ ही इन्द्रियों में संयम रखते हुए सुनने में तथा समझने में तत्पर हो।

प्रायः पुण्य के सुयोग से श्रद्धावान तो बहुत दीखते हैं। परन्तु ज्ञान की प्यास लेकर संयमी एवं तत्पर बहुत कम मिलते हैं।

श्रद्धा की जागृति गुरुदेव के समीप तक पहुँचा देती है लेकिन मोही, लोभी, अभिमानी अहंकार ज्ञान के अवतरण में बाधक बनता है। यह भी सत्य है कि ज्ञान से ही अहंकार की निवृत्ति होती है अथवा अहंकार से मुक्ति मिलती है।

माने हुए में खोये रहना, सोये हुए सुख दुख के स्वप्नों को देखते हुए हर्ष-शोक, राग-द्वेष आदि द्वन्दों में व्यस्त रहना ही तो अहंकार की मूढ़ता है।

श्रवण और स्वीकृति से जीव बंध गया है। जो भगवान को श्रद्धा से सुनेगा और स्वीकार करेगा वह मुक्त हो जायेगा।

संसार में करोड़ों नर नारी हैं जो भगवान को जानते व मानते ही नहीं। उनसे यह कहने की भूल नहीं की जा रही है कि भगवान की भी सुनों।

जो लोग मानते है कि हाँ कोई भगवान है। जो लोग भगवान का नाम जपते हैं, जो लोग भगवान के मन्दिर बनवाते हैं और भगवान की मूर्ति बनवा कर मन्दिर में भगवान की प्रतिष्ठा करते हैं। जो लोग भगवान की कथा सुनते हैं, भगवद नाम की चादर ओढ़ कर भगवद् नाम कीर्तन करते हैं। जो लोग रात-रात भर माइक लगाकर भजन गा कर पड़ोसियों को जबरदस्ती जागने को विवश करते हैं। जो लोग जवाबी कीर्तन में होड़ लगा कर परस्पर एक दूसरे को परास्त करके पुरस्कार पाना चाहते है। जो लोग मन्दिरों में आरती, पूजा करते हुए घन्टा, घड़ियाल, शंख बजा कर

भगवान को प्रसन्न होने की कल्पना से प्रसन्न होते है। जो लोग प्रार्थना में अपनी ही धुनते रहते है सदा माँगते ही रहते हैं उन्हीं से कहा जा रहा है कि होश में आओ, भगवान की भी तो सुनों।

सन्त वाणी

यदि तुम शक्ति चाहते हो, तो दूसरों की सेवा करते हुए कष्ट सहिष्णु होकर तपस्वी बनो; क्योंकि तप से दुर्बलता दूर होती है और शक्ति प्राप्त होती है। यदि तुम सुख-दुख के बन्धन से थककर शांति चाहते हो, तो जो कुछ अहं के (अपने) साथ मेरा स्वीकार कर रक्खा है, उसका त्याग करो। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो जो कुछ संसार में अनित्य है, उसका आश्रय न लेकर विरक्त ज्ञानी पुरुषों के सत्संग से सत्य ज्ञान प्राप्त करो।

अज्ञान में मानते हो, ज्ञान में जानो

करोड़ों नर-नारी ज्ञान-अज्ञान का भेद ही नहीं जानते। अशिक्षित और शिक्षित दोनों श्रेणी के लोग सारा जीवन सुखी रहने के लिए कुछ देखते रहना चाहते हैं, कुछ सुनते रहना चाहते हैं, इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन चाहते हैं, कामापभोग चाहते हैं, सुन्दर संयोग, भवन, धन चाहते हैं, सम्मान प्रतिष्ठा भी अपने ही समान भोगियों द्वारा चाहते हैं और विशेष सम्पत्ति हैं तो मरते-मरते नाम चाहते हैं। आगे के लिए कुछ दान करना चाहते हैं। मान्यतानुसार इस प्रकार करोड़ों की भीड़ में कोई भगवान की महिमा, उदारता, दया आदि की चर्चा सुनकर यदि भगवान की अराधना, प्रार्थना, पूजा करते हैं तब ऐसे लोग भी भगवान को नहीं चाहते बल्कि भगवान से ही कुछ न कुछ पूर्ति चाहते हैं और वे ऐसे ही भगवान को पसन्द करते हैं जो सस्ती पूजा से, प्रार्थना, स्तुति से ही प्रसन्न होकर मन की पूर्ति कर देता हो।

मन्दिरों में, गुरुद्वारों में, मस्जिदों में, गिरजा घरों में, धन, भोग, संयोग, सम्मान, अधिकार चाहने वालों की ही भीड़ अधिकतर मिलती है, उसमें से दाता को धन्यवाद देने वाले और कुछ न माँगने वालों को खोजना मुश्किल है।

इस गुरु निर्णय को ध्यान से समझो।

तुम यदि मोही, लोभी, अभिमानी बने हो तो अवश्य ही तुमने किसी मोही, लोभी, अभिमानी के द्वारा सुना है कि यह वस्तु तुम्हारी है, यह माता-पिता, भाई-बहिन परिवार तुम्हारा है अथवा यह अधिकार तुम्हारा है, इत्यादि जो कुछ तुम्हें सुनाया गया है वही मान लिया है इसीलिए तुम उन्हीं सम्बन्धियों की तरह वस्तुओं के लोभी बन गये हो, कुछ व्यक्तियों के मोही बन गये हो और अपने को मालिक मानकर अथवा अपना अधिकार मानकर अभिमानी बन गये हो।

यदि तुम कहीं दुखी होते हो, अशान्त, भयातुर होते हो, तो अपने ही मान्यता के कारण भीतर भरे हुए मोह, लोभ, अभिमान के कारण ही दुखी होते हो। दुखी होकर अपने अहंकार के दोषों को देख नहीं पाते हो क्योंकि दोष न हों तो वियोग का, हानि का, अपमान का, दुख हो ही नहीं सकता।

जब तुम्हें अपने भीतर के दुख देने वाले दोष दीखते नहीं है तब दूसरों को दुखदाता मानकर उन पर क्रोध करते हो, निन्दा करते हो, घृणा करते हो। तब तुम्हारे जप, पूजा पाठ, कीर्तन या मन्दिरों में भगवान के दर्शन आदि शुभ कर्मों से उन दोषों की निवृत्ति नहीं होती इसीलिए अब समझ में आ रहा हो तो भगवान की सुनो और ज्ञान द्वारा अज्ञान को दूर करो।

दोषों से मुक्त होने के लिए हमें बहुत ही सरल मन्त्र मिले हैं।

यदि अन्य किसी के दोष तुम देखोगे तब तुम्हें अपने दोष नहीं दीखेंगे।

यदि कोई पर दोष की चर्चा करे तब तुम करुणा भाव से कह दो कि विवश होकर उससे ऐसा कर्म बना है जब उनमें त्याग की शक्ति आयेगी उस समय वह निर्दोष हो जायेगा और आत्मा निरन्तर दोष रहित ही है जितने दोष हैं वह अनित्य क्षेत्र में हैं, विनाशी में हैं, अहंकार में ही दोष है।

यदि तुम अपनी दृष्टि से दोषी होकर दूसरो की दृष्टि में निर्दोष बने रहना चाहते हो तो याद रहे तुम महा दम्भी हो।

गुणों का झूठा अभिमान छोड़े बिना दम्भ से और पाखण्ड से मुक्ति नहीं मिलती।

भगवान ने कहा है किसी से क्षुभित न बनो और किसी को क्षुभित न करो... यह पढ़ सुन कर अहंकार अपनी आदतों का इतना सेवक है कि अवसर पर स्मरण नहीं रहता। साधक को स्मरण रखना चाहिए।

तुम्हारे मन में यदि अनुकूलता का लालच न रहे और प्रतिकूलता भय न रहे तब दम्भादि दोषों से बच सकते हो।

जाने हुए दोषों के त्यागी और गुणों के अभिमान से रहित तुम तभी हो सकोगे जब फलासक्ति छोड़कर निष्काम सेवा कर सकोगे। तभी चित्त शुद्ध होगा।

'ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृत कृत्यस्य योगिनः।'

जो आत्मा ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त है, जो आत्म-ज्ञान से कृतकृत्य है उसे कुछ भी करने योग्य कर्म नहीं है। भगवान ने कहा है जो आत्मा में ही तृप्त है, जिसकी आत्मा में ही प्रीति है जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसे कुछ करना शेष नहीं रहता। (गीता)

सद्गुरु कहते हैं कि आनन्द परमानन्द बोधस्वरूप तुम ही हो। तुम यह देह नहीं हो। देह को तुम मेरी कहते हो परन्तु देह कभी नहीं कह सकती कि मैं तुम्हारी हूँ क्योंकि देह जड़ है तुम नित्यचेतन हो।

बन्धन का अभिमान बँधा ही रहता है मुक्ति का अभिमानी मुक्त हो जाता है। जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है।

तुमने बिना विचारे ही दूसरों से अज्ञानी जनों से सुन-सुन कर जैसा मान लिया है वैसे ही बन गए हो।

ज्ञानी गुरु की सुन कर अपने सत्स्वरूप को जान लो तुम माने हुए बन्धनों से मुक्त हो जाओगे।

उलटे असत् अभ्यास को बार-बार ज्ञान में देखो।

यदि तुम बँधे ही रहना चाहते हो तो कोई मुक्त न कर सकेगा वस्तुओं के,

व्यक्तियों के तथा देह के छूट जाने पर भी तुम मेरी मेरी ही रटे जाओ तब मुक्ति का कोई उपाय नहीं। तब तो तुम अपने ही शत्रु हो।

सकामी अहंकार सदा मनोरथ में ही सवार रहता है।

हमें बताया गया है कि सभी अपेक्षाओं को छोड़ कर निष्काम होकर कहीं भी बैठ जाओ और अपने उपास्य देव की उपस्थिति का अनुभव करो, मौन, शान्त रहो और जो भी खटपट हो ध्वनि हो उसे उसी प्रभु की सत्ता होती हुई जान कर साक्षी होकर देखते रहो।

कुछ भी तुम चाहो ही नहीं जो प्रभु के बिधान से आये वही स्वीकार कर लो। जब तुम अपने सर्वज्ञ प्रभु से कुछ माँगते हो तब इसके अर्थ यही निकलते है कि समर्थ प्रभु जानते ही नहीं कि इस समय तुम्हें क्या चाहिए? तुम्हारी समझ अधिक दूरदर्शी है। निष्काम प्रेमी यही समझ कर आनन्दित रहता है कि जो भी मुझे मिला है यही मेरे हिस्से का है, मेरा हित इसी में है। प्रेमी उपासक अपने तन-मन को प्रभु के ही आश्रित छोड़ देता है।

अभिमानी अहंकार, अज्ञान बस अपने तन का बोझा तो ढोता ही है लेकिन जब उसका विस्तार बढ़ता है तब परिवार का भार भी सम्हालता है। इससे अधिक शिक्षित नेता तो समाज का, देश का, राष्ट्र का भार अपने ही ऊपर मानता है। उसकी दृष्टि में ईश्वर की प्रकृति से कुछ भी होता हुआ नहीं दीखता। भूमि, जल, अग्नि, वायु, सूर्य से कुछ नहीं हो रहा है। सारा जीवन विद्वान् नेता ही चला रहा है तन, प्राण तथा जीवन की वही सुरक्षा कर रहा है-यही है अभिमानी कर्ता अहंकार की मूढ़ता।

अज्ञानी लोभी जनों को लालच देकर शुभ कर्म करते रहने के लिये पण्डित जन प्रेरित करते हैं।

कहीं-कहीं सत्यनारायण की कथा रेकार्ड से भरी हुई सुनी जाती है अब पण्डित की भी जरूरत नहीं है, यह पण्डितों के लोभ को देखकर लोभी धनिकों ने अभिमान के कारण अनुकूल युक्ति निकाल ली है। पण्डितों से मुक्ति पा गए। एक महात्मा कर रहे थे कि एक भक्त अहंकार ने कई धर्मों की प्रार्थना लिख कर अपने कमरे में लटका रक्खी थीं, वह नित्य सोते समय हाथ जोड़ कर कह देता था कि प्रभो जो प्रार्थना पसन्द हो उसे या सभी पढ़ लेना और हमारी रक्षा करना। यह अहंकार की चतुरता है इसे पहिचान लो।

लोभी, अज्ञानी, उपदेशक बन कर बिलकुल भूल जाता है कि हम भी अज्ञानी हैं। उन्होंने जिसे देखा नहीं उसे समझाते हैं। उन्हें भी मान देने वाले अज्ञानी मिल जाते हैं और उनकी सुनते हैं अन्त में भेंट चढ़ाते हैं। धन के लोभी उपदेशक को भी फल के लोभी श्रोता मिल ही जाते हैं। लोभी उपदेशक को अपने कुछ श्रम से धन

मिल जाता है, इसी प्रकार फल के लोभी श्रोता को दान के पुण्य से कभी न कभी फल मिलेगा ही। फल की कामना ही मनुष्य को भोगी बनाती है।

एक सन्त कहते थे कि सुख चाहे वह भोगी है, जो दुख को भोगे नहीं, पहले से ही देखे, वह त्यागी होता है। जो सुख-दुख का साक्षी रहे वह हंस है।

गुरु वाक्य

यदि तुम कहीं चिन्ताग्रस्त हो, तो अवश्य ही कर्त्तव्यपालन में आलसी-प्रमादी हो। यदि तुम कहीं पश्चाताप से पीड़ित हो तो अवश्य ही तुम कहीं किसी के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग करते हो, अपमान करते हो, तो अवश्य तुममें कठोर स्वभाव वाली आसुरी प्रकृति दृढ़ है। तुम्हारा किसी प्रकार का दुःख इसी बात को सिद्ध करता है कि तुममें दोष हैं और तुम्हारे दोष इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि तुम अज्ञान में कर्म करते हो। यदि ऐसा है तो सावधान होकर अपने अज्ञान को ज्ञान में देखो।

ज्ञानी मृत्यु से शोकित नहीं होता

मानने वाले मोही, ज्ञान के झूठे अभिमानी जनों की भीड़ करोड़ों की संख्या में है। किसी में बहुत ही साहस हो वही ज्ञान के अनुसार किसी प्रिय स्वजन की मृत्यु में अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है।

हमें समझाया गया है कि जब तुम्हारे निकटवर्ती का शरीर छूटे तब तुम शरीर के लिए शोक विलाप न करके गीता या जो भी अपना धर्म ग्रन्थ हो उसे पढ़ो, उस मृत प्राणी की शान्ति के लिए पढ़ो प्रत्युत अपनी अशान्ति हटाने के लिए पढ़ो। क्योंकि गीता में आरम्भ से ही विषाद दुख को दूर करने के लिये नित्य रहने वाले आत्मा और न रहने वाले देहादि अनित्य पदार्थों को बताया गया है। यह निर्णय कर दिया है कि धीर ज्ञानी पुरुष शरीर की मृत्यु पर शोक नहीं करते।

यदि तुम्हारा मन वियोग से व्यथित है तब अपने सुखार्थी भोगार्थी मन की दरिद्रता को पहिचानों और विवेक द्वारा उसे दूर करो।

यह मनन न करो कि हाय अब वह सुख कैसे मिलेगा, अब क्या होगा बल्कि यह मनन करो इतने दिन संयोग का सुख मिल गया, बहुत मिल गया और उसकी अर्थी को प्रसन्नता पूर्वक हरिनाम कीर्तन करते हुए ले जाओ। आज भी हिन्दुओं में यह प्रथा है परन्तु भावना ठीक नहीं। 'रामनाम सत्य है' ऐसे कहते जाते हैं जैसे रिकार्ड बोल रहा हो, कोई अर्थ नहीं, भाव नहीं, सब करते है इसी लिये हर एक व्यक्ति प्रथा को दुहराता है।

उस समय अपने शरीर की मृत्यु को साथ चलते देखना चाहिए और आत्मा को अविनाशी जान कर निर्भय होकर आत्म भाव में रहना चाहिये।

ज्ञान में मूढ़ता से मुक्ति

हमें समझाया गया है कि विश्वास श्रद्धा के साथ तुम सुने हुए माने हुए भगवान के दर्शन करने मन्दिरों में जाते हो, महात्माओं के दर्शन करने जाते हो कभी प्रश्न भी करते हो कि भगवान के दर्शन कैसे होंगे।

यदि अभी तक न सुना हो, आज सुन लो और दर्शन का व्यर्थ प्रश्न न उठाना।

भगवान ने बता दिया है कि जो मूढ़ है उसे दर्शन नहीं हो सकते क्योंकि दर्शन के लिए ज्ञान चक्षु खुलने चाहिए और मूढ़ व्यक्ति के ज्ञान चक्षु खुल नहीं पाते।

चार वेद छः शास्त्र तथा पुराण एवं कुरान बाइबिल किसी भी धर्मग्रन्थ का विद्वान हो यदि उसने लोभ को, मोह को, अभिमान को कामना आदि विकारों को छोड़ा नहीं तब तक वह मूढ़ ही है।

सम्यक दर्शन अर्थात् सत्य का, परमात्मा का, आत्मा का बोध स्वयं में ही हो सकता है। यदि यहाँ नहीं हो सकता तो समुद्र के एकांत तट पर हिमालय की गुहा में भी नहीं हो सकता।

मूढ़ता में यह कल्पना न करना कि गृह परिवार धन छोड़ने से परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे।

गृह परिवार धन भूमि, वैभव आदि दर्शन में बाधक नहीं है। इनके प्रति आसक्ति वश मूढ़ता ही दर्शन में बाधक है यदि मूढ़ता टूट जाये तब तो तुम स्वात्मा परमात्मा को वहीं पाओगे जहाँ से भागना चाहते हो।

मूढ़ता मिटते ही माता-पिता, पति-पत्नी पुत्र मित्र शत्रु सभी के विनाशी शरीरों में अविनाशी आत्मा का बोध होगा।

बहुत आश्चर्य की बात है, आत्मा परमात्मा के हम दर्शन करना चाहते हैं लेकिन गीता उपनिषद् रामायण पढ़ते हुए हम मन की मूढ़ता को नहीं देख पाते जो दर्शन के द्वार को ही रोके हुए हैं।

सन्त कहते हैं कि तुम भूमि भवन धन का दान करते हुए अथवा इनका त्याग करके अहंकार को ही तृप्त करते हो परन्तु मन की मूढ़ता को नहीं छोड़ पाते।

जिसका दान करते हो, जिसका त्याग करते हो यह तो मृत्यु में ही छूट जायेगा। लेकिन मूढ़ता तो मन के साथ दूसरे जन्म में भी रहेगी। मोह, लोभ, काम क्रोध, ईर्ष्या द्वेषादि मूढ़ता के साथ चलेंगे।

सदगुरु कहते हैं- (न शान्ति लभते मूढ़ो)

मूढ़ को शान्ति लाभ नहीं होती। मूढ़ व्यक्ति कुछ न कुछ चाहता ही रहता है

व स्थिर हो ही नहीं पाता।

अष्टावक्र गीता में कहा है -

मूढ़ व्यक्ति कर्माभ्यास के द्वारा मोक्ष को नहीं प्राप्त होता; लेकिन कर्म का दृष्टा भाग्यवान पुरुष विज्ञान द्वारा ही मुक्त स्थिर रहता है।

यह समझ लेना है कि आँखों से रूप को देखना दर्शन नहीं है दृष्टा को देखना दर्शन है।

जो दृश्यों में अटका हुआ मन है, यही तो मूढ़ता है। यह मूढ़ता आत्मा के बोध में दीवाल बन रही है।

मूढ़ता की बात मन्द बुद्धि वाले पढ़ेंगे, सुनेंगे फिर भी मूढ़ता को नहीं छोड़ पायेंगे। सूक्ष्म बुद्धि वाले ज्ञानवान ही मूढ़ता को पार कर सकेंगे।

मनोमय कोष के अभिमानी भोक्ता अहंकार को ही मूढ़ता का परिणाम भोगना पड़ता है।

विज्ञान मय कोष में अधिकार प्राप्त होने पर विज्ञानमय पुरुष ही मूढ़ता को और उसके दुखद परिणाम को भोगने के प्रथम ही देख लेता है वहीं मूढ़ता के त्याग में समर्थ होता है। ऐसे सन्त ही गाते हैं :-

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परि हरि राम भगति सुर सरिता करत आस ओस कन की ।।

मूढ़ वही जो किसी प्रकार के धन मद, बल मद, विद्यामद, कुल मद, रूप का मद, अधिकार मद में होश में नहीं हो, जो स्वयं में न हों, जो ज्ञान में जागृत न हो।

सन्त वचन

कामना को महाव्याधि समझो, अज्ञान को सर्वोपरि शत्रु समझो, क्रोध को एक आग समझो ज्ञान को सर्वोपरि सहायक समझो। धनी हो तो दानी बनो, दरिद्र हो तो तपस्वी बनो। दुखी हो तो त्यागी बनो, सुखी हो तो उदार सेवक बनो और यथार्थ ज्ञानी हो तो स्वामी बनो।

ज्ञान में स्वीकृतियों मान्यताओं से मुक्ति

यह अहंकार जो सुनता है, अज्ञान में उसे ही मान लेता, स्वीकार कर लेता है। ज्ञान में जान लेने पर ही मुक्ति मिलती है।

मैं अनेक परिवारों में देखता हूँ कि घर के पुरुष शिक्षित हैं, लेकिन घर में बहुएँ उतनी शिक्षित नहीं हैं, यदि हैं भी तो भावुक हैं,श्रद्धालु हैं, उन पर पण्डितों की कथा का प्रभाव पड़ चुका है। वे अपनी मान्यतानुसार अपने माने हुए भगवान की, ठाकुर जी की पूजा, आरती करती हैं अपने भगवान को भोग लगा कर ही भोजन करती हैं। इतना ही नहीं वे भगवान को रात में शयन करातीं हैं, प्रातः जगाती हैं, रजाई उढ़ाती हैं, शीतकाल में अँगीठी रखती हैं, गर्मी में पंखा चलने देती हैं। सत्यनारायण की कथा सुनती हैं।

घर के पुरुष शिक्षित पुत्र, पोते, बहुएँ वह सब कृत्य देखकर मन ही मन हँसते हैं, लेकिन उदार हैं, बाधा नहीं डालते परन्तु वे समझाना चाहें तो उन्हें समझा नहीं सकते क्योंकि उनकी मान्यता बहुत मजबूत हैं, अहंकार स्वीकार कर चुका है, वह अपनी स्वीकृति की, मान्यता की इतनी अधिक मोही हैं कि कोई समझाये तो भी आसानी से यह मोह का त्याग उसी तरह नहीं कर सकती जिस प्रकार घर के शिक्षित विद्याभिमानी बाबू लोग अपने परिवार के प्रति माने हुए झूठे मोह को अथवा अपनी अंहकार की स्वीकृतियों को नहीं छोड़ सकते।

मनुष्य में अहंकार जो कुछ सुन कर स्वीकार कर लेता है उसी का मोही बन जाता है। अपनी स्वीकृतियों के मोह बस ही माव जाति में हिन्दू, मुसलमान, मन्दिर मस्जिद के पीछे लड़ते हैं। आर्य और सनातन धर्माभिमानी साकार निराकार के पीछे कलह क्रोध विवाद करते रहते हैं। वेदज्ञ और बौद्ध जैन परस्पर शब्दाघात करते रहते हैं।

सन्त, महात्मा, सुधारक, समाज के नेता और सत्ताधिकारी सरकार द्वारा भी मान्यता के पीछे होने वाली लड़ाइयाँ शान्त नहीं हो सकी।

अवश्य जो स्वयं ज्ञान में मान हुए को जान लेता है जो कोई अपनी मूढ़ता को स्वीकृतियों के मोह को समझ लेता है वही इन संघर्षों में समस्थित तटस्थ रहता है।

प्रायः देखा जाता है कि वेद शास्त्र के विद्वान पण्डित भी जब तक मन के पार नहीं हो पाते तब तक मन से माने हुए नामों में, रूप में, वर्णाश्रम में तथा माने हुए धर्म में एवं माने हुए भगवान में, मानी हुई सिद्धियों में मोही बगनकर अटके रहते हैं। आत्मा-अनात्मा की व्याख्या करते हुए भी बुद्धि को नित्य सत्य आत्मा परमात्मा में

स्थिर नहीं कर पाते।

भगवान को मानने वाले हजारों लोग भागवत पुराण सप्ताह कथा इसीलिये सुनते हैं क्योंकि धुन्धकारी जैसे महाप्रेत को सात दिन भागवत सुनने से मुक्ति मिल गई थी लेकिन हजारों श्रोताओं में से एक भी नहीं मिलता जो सातवें दिन अधिक नहीं तो देह से ही मुक्त होना चाहता हो।

भगवान को मानने वाले कहते हैं कि जो आगे उदर में (गर्भ में) नहीं आना चाहता हो वह श्री बद्री नारायण धाम की यात्रा कर ले।

लाखों नर-नारी बद्री विशाल के दर्शन करने जाते हैं लेकिन मुक्ति चाहने वाला कोई नहीं होता।

हमें समझाया गया है कि यदि तुम्हें गुरु वाक्य पढ़ने-सुनने का सौभाग्य सुलभ है तो अभी यही समझ लो कि बन्धन कितने हैं? और किस बन्धन से मुक्ति पाने का कौन-सा उपाय है?

अनेक साधक हैं जो दुखी होने पर दुख से छूटना चाहते हैं परन्तु भीतर बन्धनों की रक्षा भी चाहते हैं। रक्षा के लिए ही प्रार्थना, जप करते हैं।

गुरु-वाक्य

तुम तीक्ष्ण दृष्टि से अपने भीतर निरीक्षण करते रहो और सावधान रहो। जहाँ तक तुममें अभिमान रहेगा, वहाँ तक तुम संघर्ष से नहीं बच सकते। जहाँ तक अज्ञान रहेगा, वहाँ तक तुम बन्धन दुख से नहीं बच सकते। जहाँ तक लोभ रहेगा वहाँ तक क्रोध, कलह से नहीं बच सकते। जहाँ तक मोह रहेगा वहाँ तक व्याधि-उपाधि तुम्हारे साथ लगी ही रहेगी। जहाँ तक तुममें किंचित भी जगत् पदार्थों की वासना रहेगी वहाँ तक संसार की दासता से मुक्त नहीं हो सकते। जब तुम्हें पाप और प्रलोभन पराजित न कर सकें, तभी तुम्हारी उन्नत अवस्था मानी जा सकती है।

अनात्मा और आत्मा का विवेक

सद्‌गुरु का हृदय कितना करुणा से भरा होता है करुणित हृदय से सम्बोधित करते हैं सद्‌गुरु अपने प्रिय शिष्य जनक को :-

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व नाम मोहं कुरुष्व भोः।
ज्ञान स्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः ।।

हे तात हे प्रिय! श्रद्धा कर, श्रद्धा कर इसमें मोह मत कर तू ज्ञान रूप भगवान आत्मा प्रकृति से परे है।

जिस स्थान में यह संसार समुद्र की तरंगों की तरह स्फुरित होता है सो तुम्हीं हो इसमें सन्देह नहीं। तुम चेतन रूप, सन्ताप रहित हो।

जो अपने से भिन्न किसी और साधन की अपेक्षा न करके अपने प्रकाश से अन्य पदार्थों को प्रकाशित करे उसी को सत् चेतन कहते हैं।

जो अज्ञान को नाश करके अपने आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करे उसी का नाम आत्म ज्ञान हैं।

(अर्थ प्रकाशोहि ज्ञानम्)

जो पदार्थ को प्रकाशित करे उसी का नाम ज्ञान है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, चेतन स्वरूप हैं।

जो न अपने को न जाने, अपने से भिन्न को न जाने, जिसकी उत्पत्ति हो, जिसका विनाश हो, वही अनात्मा जड़पदार्थ है। जो उत्पत्ति विनाश से रहित नित्य अविनाशी है वही आत्मा है।

जब तक मनुष्य अपने को देहमय मानता है, देह के आकार को अपना रूप मानकर उसी की सजावट बनावट में अपने को कृत कृत्य समझता है, वही गुरु को भी देहमय ही मानेगा उसकी समझ में (केवल ज्ञान मूर्तिम्) गुरु केवल ज्ञान स्वरूप हैं- यह समझ में नहीं आयेगा।

इस प्रकार देह को गुरु मानने वाले, 'चिदानन्द मय देह तुम्हारी' इस चौपाई को स्थूल देह मे घटित करने वाले अनेक गुरु हैं वह देह में ही शिष्यों को अटकाये रहते हैं।

शिष्य भी ऐसे गुरु भक्त होते हैं कि गुरुदेव के ज्ञानामृत की परवाह नहीं करते लेकिन चरणामृत नित्य धोकर पीते हैं, जूठा भोजन प्रसाद समझ बहुत ही भावपूर्वक छीना झपटी करके लेते हैं। इतना जूठे प्रसाद का लालच रहता है कि कहीं सब बँट न जाये परन्तु गुरु ज्ञान रूप अमृत की प्यास नहीं बढ़ती।

यह तो मानना होगा कि जिसका हृदय विकार रहित है, निरन्तर परमात्मामय

जिसका प्रेम रहा है। जिसमें ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, काम के विचारों का प्रवेश नहीं होता- ऐसे ज्ञानी भक्त की अँगुलियों से बहुत शुद्ध कम्पन तथा विचारों और भावों की पवित्र लहरें बिखरती रहती हैं उसकी समीपता से मनोभाव में सात्विक बल मिलता है लेकिन जूठा जल, जूठा अन्न खाने से ज्ञान बढ़ने की भावना समझ में नहीं आती देह के प्रति मोह अवश्य बढ़ सकता है। देहोपासना हो सकती है।

गुरु ज्ञान में हमें समझाया गया है कि तुम देह नहीं हो, तुम किसी जाति-पाति वर्ण में नहीं हो यहाँ तुम्हारा कुछ भी नहीं है फिर भी तुम अपने ज्ञान में स्वीकार कर लिये हो उसी मान्यता के अनुसार अपने को देहमय, मनमय, बुद्धिमय मानते हो अब ज्ञान में जानो ध्यान से देखो।

जबसे हम गुरु उपदेश सुनने लगे तबसे कहा जा रहा है कि अब देह भाव को छोड़कर आत्म भाव से रहो। जड़ भाव छोड़कर नित्य निरन्तर चेतन भाव से रहो।

अब यह अभ्यास छोड़ दो कि मैं काला, गोरा, मोटा दुबला हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ मूर्ख हूँ या विद्वान हूँ। तुम कुछ भी न बनो। अपने-आप को नित्य निरन्तर ज्ञान स्वरूप आत्मा समझ कर देहादिक पदार्थों को और इनके धर्म को सुख-दुख को दृष्टा होकर देखो।

आत्म भाव दृढ़ होने पर 'मैं' मेरा के स्थान में 'यह' दिखने लगेगा। यह देह, यह मन, यह बुद्धि यह अहंकार, यह सुख, यह दुख, यह गुण, यह दोष, यह संसार अर्थात् सारा दृश्य यह करके प्रतीत होना चाहिए। किसी भी पदार्थ को मेरा न मानना ही अहं के आकार को मिटा देना है।

यह गुरु उपदेश कितना हितकारी है कि मैं को, यह जो देह आदि पदार्थ हैं इनसे न मिलाकर नित्य चेतन आत्मा से मिला दो।

मन के मूल में महान शक्ति का श्रोत है। साधु महात्माओं में जो सिद्धियाँ देखी जाती हैं वह मन के अन्तर्गत सुप्त शक्ति की ही जाग्रति है। जितना ही कोई शक्ति के प्रवाह को रोक लेता है उतना ही संकल्प सिद्धि के रूप में शक्ति का विस्फोट होता है।

साधारण व्यवहार में मनुष्य को मन दृढ़ संकल्पवान होना चाहिये तथा बुद्धि भी तीव्र अथवा दूरदर्शी होने के साथ परिणामदर्शी होनी चाहिये। परन्तु सभी की नहीं हो पाती क्योंकि ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध एवं व्यर्थ चिन्तन में शक्ति नष्ट होती रहती है।

व्यर्थ अनर्थकारी संकल्पों से शक्ति को बचाने से आनन्दमय कोष की निकटता होती जाती है।

जिस प्रकार लहरों से प्रशान्त सागर ढका रहता है उसी प्रकार मन की

चञ्चलता से संकल्पों की भीड़ से आत्मा ढकी रहती है।

संकल्पों से मुक्त मन आत्मामय होता है। तुम आत्मा होकर रहो। सभी नाम रूपों में आत्मा को पहचानों तब किसी से भय नहीं होगा।

एक ऋषि कहते हैं कि मन में ब्रह्म की महान शक्ति समझ कर (मनो ब्रह्मेत्युपासति) मन में ही ब्रह्म की उपासना करो।

सज्जन साधु ही नहीं बल्कि दुर्जन दुष्ट के भीतर शक्ति का स्रोत आत्मा ही है। अहिंसाव्रती और हिंसक में आत्मा की ही शक्ति रहती है। उसी शक्ति से आनन्द की ओर या दुख की ओर सद्‌गति या अधोगति होती है।

सन्त संगति से यह भी ज्ञात हुआ है कि मनुष्य विद्वान होने पर भी यदि मोह के कारण या लोभ के कारण अथवा कामना की अपूर्ति के कारण अथवा अभिमान के कारण जितना अधिक ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से भरा रहेगा जितना अधिक क्रोध करेगा या मन ही मन अशान्त रहेगा उतना ही अधिक उसके भीतर रोग बढ़ते जायेंगे और उसकी आयु घटती जायेगी।

श्रद्धालु साधक को गुरु विवेक के सहारे अपने मन को शुद्ध एवं आत्मस्थ रखने के लिए सदा स्वस्थ रहने के लिए क्रोधादि विकारों में अपनी शक्ति को नष्ट न करके सदा सुख-दुख में सम रहना चाहिए। समता में रहने के लिए सुख-दुख को अपने ऊपर नहीं ओढ़ लेना चाहिये बल्कि सुख-दुख के ऊपर चढ़कर उनकी सीमा को अर्थात् आरम्भ कहाँ से हुआ और अन्त कहाँ होना है, इसे समझ लेना चाहिये। क्योंकि सुख-दुख अपने मान लेने से प्रतीत होता है; सत्य नहीं है, सदा रहने वाला नहीं।

हम जितने समय तक प्रीति पूर्वक जिसे चाहते हैं वही सुखद है और जब नहीं चाहते हैं वही दुखद बन जाता है। सुखद के प्रति राग, मोह बढ़ता है और दुखद मानने से, द्वेष से, घृणा से मन अशान्त होता है तभी विषमता बढ़ जाती है समता का स्मरण ही नहीं रहता है। राग-द्वेष विषमता, घृणा आदि विकारों के कारण सारा ज्ञान-ध्यान भूला रहता है।

एक विरक्त तत्ववेत्ता सन्त वर्षाकाल में एक नगर के बाहर ठहरे थे श्रद्धालु लोगों की भीड़ जाते देखकर वहाँ का राजकुमार सन्त संगति में पहुँच गया दूसरे दिन उसने एक पत्र लिखकर सन्त को दिया। उसमें लिखा कि महात्मन्! मुझे जीवन में सब प्रकार के सुख सुलभ हैं, स्वस्थ, सुन्दर शरीर मिला है, सम्पत्ति, सुयश, सम्मान सभी सुख प्राप्त हैं इसके अतिरिक्त मुझे संसार में और क्या चाहिये? मैं क्यों ज्ञान, ध्यान, भजन आदि के चक्कर में पड़ूँ।

महात्मा ने उसे पढ़ा और पूछा कि राजकुमार तुम्हें पुण्य प्रताप से सभी प्रकार की शारीरिक, मानसिक अनुकूलता सुलभ है परन्तु शान्ति के बिना यह सभी

कुछ व्यर्थ है और समझ सको तो अभी समझ लो- एक दिन मृत्यु सब कुछ व्यर्थ कर देगी।

राजकुमार ने विचार किया कि मैं कभी हानि की आशंका से, कभी वियोग की कल्पना से, कभी मान-हानि की संभावना मात्र से, कभी आगे आने वाली वृद्धावस्था के चित्र से अभी अशान्त हो जाता हूँ। तब महात्मा से पूछा कि वह शान्ति कहाँ कैसे सुलभ होगी। महात्मा ने कहा कि तुम अपने पिता से पूछो।

राजमहल में आकर राजकुमार ने पिता से पूछा तब पिता स्वयं ही विचार करने लगा कि शान्ति तो मुझे इतनी आयु बिताने पर नहीं दीख रही है। पुत्र द्वारा महात्मा की चर्चा सुनकर राजा भी बहुमूल्य भेंट लेकर दर्शन करने गया और प्रश्न किया कि आप जो चाहें धन ले लेवें मुझे शान्ति प्रदान करें। महात्मा ने बताया शान्ति तो त्याग से सुलभ होती और त्याग बाहर नहीं होता, भीतर होता है।

हमें समझाया गया है मुक्ति या शान्ति कहीं जाने से किसी के देने से नहीं मिलती। चाहे जब ध्यान से देख लो-जब तुम्हारा मन अथवा चित्त बीते हुए का, भोगे हुए का मनन, चिन्तन नहीं करता जब कुछ ग्रहण नहीं करता, न छोड़ता है जब किसी को पाकर न तो हर्षित होता है न दुखी होता है, तब शान्ति सुलभ है तभी मुक्ति सुलभ है।

जितनी देर तक तुम्हें शान्त मुक्त रहना है उतनी देर तक विचार रहित, विकार-रहित चिन्तन मनन छोड़कर शुद्ध चेतन स्वरूप का अनुभव करो। कहीं जाने की या कुछ छोड़ने की या पकड़ने की आवश्यकता ही नहीं है।

किसी संयोग में सुख मानोगे तब तो बियोग दुःख से अशान्त दुखी होना ही पड़ेगा। कहीं हर्षित हुए कि उसी क्षण कभी न कभी शोक को आने का द्वार खोल दिया।

विनाशी पदार्थों के संयोग में, लाभ में अथवा सम्मान में सुखास्वाद लेते ही मोह, लोभ, अभिमान आदि बढ़ने लगते हैं वही आगे चलकर दुख देते हैं।

तुम्हें दुख नहीं चाहिये तो दोष से बचो और दोषों से बचना हो तो सुखासक्ति से सावधान रहो। यदि दुख चाहिए तो भोगी बने रहो।

हमें समझाया गया है कि हो सके तो संकल्पों के श्रोत को ध्यान से देखो जहाँ से अहंभाव स्फुरित होता है वहीं ध्यान ठहराओ या फिर श्रद्धा प्रेम के साथ महान शक्ति के समर्पित होकर सहज शान्त रहो, निर्भय रहो और उसी के ऊपर निर्भर रहो।

यह गुरु निर्णय है कि -

भक्ति की साधना में समर्पण सहज होता है और ध्यान की साधना में केवल

सजग रहकर ज्ञान में देखते रहना सहज बन जाता है।

एक सन्त के मत से ध्यान से स्वयं को पाना होता है फिर परमात्मा की भक्ति का रस है और समर्पण में प्रथम भक्ति से परमात्मा की अनुभूति है उसी के साथ स्वयं में विश्राम का आनन्द है।

सन्त ने बताया है कि परमात्मा में गोता लगाना प्रेम में ही सम्भव है। स्वयं में डूबना ध्यान से सम्भव है। ध्यान से स्वयं तक पहुँचना सुगम होता है और प्रेम से परमात्मा में तन्मय होना सहज होता है।

तुम परमात्मा को जहाँ भी स्वीकार करोगे जहाँ जब परमात्मा के लिए तुम स्वयं को उपस्थित करोगे वहीं तुम्हें परमात्मा सुलभ हो सकता है। समग्र प्रेम ही परमात्मा की अनुभूति का द्वार बन जाता है। गीता में भगवान ने यही समझाया है।

संसार के धन, मान, भोग को पाने, बचाने के लिए परमात्मा का त्याग करने वाले हजारों संसार के भक्त हैं- लेकिन परमात्मा के लिए भोगी अहंकार का त्याग करने वाले कौन है?

सभी तत्वदर्शी, आत्मवेत्ता गुरु जन समझाते हैं कि शक्ति का श्रोत चेतन आत्मा है परन्तु अहंकार शक्ति को अपना मान कर पुनः सर्व शक्तिमान परमात्मा की खोज करता है और यह भूल ही गया है कि परमात्मा खोजने वाले में निरन्तर मौजूद हैं।

आत्मा ही आनन्द है परन्तु अहंकार आभास को आनन्द मान कर तृप्त होना चाहता है। क्योंकि यह छाया ही देखता है।

जीवन की अज्ञात यात्रा में ऐसा भी समय आता है जब किसी भी वस्तु से तथा किसी भी सम्बन्धित प्रेम पात्र से तृप्ति नहीं होती है तब सब ओर से निराश होने पर सभी कुछ छूट जायेगा, कुछ भी साथ नहीं रहेगा- ऐसा निश्चय होने पर प्रेम भीतर लौटता है तब वही प्रेम जो वस्तुमय था, व्यक्तिमय था अथवा प्रतीत होने वाला सुखमय था, जो देहमय था, वह समग्र प्रेम, परमात्मा मय है- ऐसा बोध होता है।

संसार से निराश हुए बिना सत्य की खोज, परमात्मा की खोज में काई प्रगति उन्नति सदगति नहीं होती, परमात्मा को पाने की प्यास नहीं होती। प्यास की पूर्णता में पूर्ण परमात्मा तत्क्षण सुलभ होता है।

कोई पानी का प्यासा किसी मरुस्थल में भटक जाये, निराश हो जाय तब कोई एक गिलास पानी बेचने वाला मिल जाये तब जो कुछ भी सम्पत्ति होगी या साम्राज्य होगा वह सब देकर पानी पीने को तैयार हो जायेगा लेकिन परमात्मा की प्यास किसमें है जो सर्वस्व देकर परमात्मा को पाना चाहता है।

गुरुज्ञान में ध्यान से बहुत समझ लेने योग्य विज्ञान की बात अनुभवी विज्ञान वेत्ता ने कही है :- आज का विकसित विज्ञान भी विकास क्रम को देख रहा है लेकिन ऋषि की खोज विलक्षण है।

ऋषि देखते हैं कि परमात्मा में ही यह अव्यक्त प्रकृति व्यक्त होती है। परमात्मा की सत्ता से ही प्रकृति का कण-कण गतिमान है। परमात्मा की चेतना प्रत्येक कण के जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण होने के लिए विकसित हो रही है।

विकास का आरम्भिक बिन्दु अव्यक्त प्रकृति का परमाणु है अन्तिम विकास की पूर्णता ईश्वर है।

एक महापुरुष समझा रहे थे कि जिसका अब पतन हो ही न सके वह शून्य है और जिसका विकास अब हो ही न सके वही पूर्ण है। शून्य से पूर्ण तक की यात्रा ही यह विश्व विलास है। रामतीर्थ स्वामी कहा करते थे :-

नशे में जवानी के माशूक नेचर।
है लिपटी हुई राम से मस्त हो कर।।
जिधर देखता हूँ जहाँ देखता हूँ।
मैं तेरी ही ताबे वशां देखता हूँ।।

जितने घड़े बनते जाते हैं उतने ही सूर्य के प्रतिबिम्ब बढ़ते जाते हैं। घड़े इधर से उधर होते रहते हैं प्रतिबिम्ब भी चलता दीखता है लेकिन सूर्य एक समान ज्यों का त्यों रहता है। घड़े बनते है, मिटते हैं परन्तु घड़े का आकार न बनता है, न मिटता है, न आता है न जाता है। इसी प्रकार अहंकार और परमात्मा का सम्बन्ध है। परम गुरु भगवान ने कहा है :-

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निः श्रेयसमनल्पकम्।
तस्यान्निराशिषो भक्ति निरपेक्षस्य में भवेत्।।

सबसे श्रेष्ट महान निःश्रेयस (परम कल्याण) तो निरपेक्षता ही है किसी भी आश्रय साधन की आवश्यकता ही न रहे इसलिए जो किसी भी वस्तु, व्यक्ति, देश, काल की अपेक्षा नहीं रखता उसी को मेरी भक्ति सुलभ होती है। अर्थात भेद भिन्नता का अन्त हो जाता है।

महाराजा जनक को सदगुरु सावधान करते हैं :-

क्वात्मनों दर्शनं तस्य यद्दृष्टमवलम्बते।
धीरास्तं तं न पश्यन्ति पश्यन्त्यात्मानमव्ययम।।

अर्थ - उसे आत्मा का दर्शन कहा है। जो दृश्य का अवलम्बन करता है। धीर पुरुष दृश्य को नहीं देखते हैं वह तो दृश्य के प्रकाशक अविनाशी आत्मा को

देखते है वह आत्मा तुम्हीं हो। देहाभिमानी मनोमय पुरुष बाह्य नेत्रों से दृश्य को देखता है और अनुकूल का रागी, प्रतिकूल का द्वेषी होता है।

सदगुरु कहते हैं तुम अन्य वस्तु अथवा व्यक्ति को या किसी भी अन्य को सुखद मानते हो यही मूढ़ता है।

सुख तो तुम्हारा स्वभाव ही है परन्तु अपने सुख स्वरूप स्वभाव में ठहर नहीं पाते हो बुद्धि को स्वभाव में स्थिर नहीं करते हो। तुम न करोगे तब दूसरा कोई करेगा। सुखी रहना चैतन्य का स्वभाव ही है जड़ की स्मृति स्वभाव से विमुख बना देती है।

सत् चित् आनन्द की खोज बाहर न करो वह तो तुम्हीं हो ठहर कर देखो तो। यदि साथ इन्द्रियां रहेंगी, मन रहेगा, अहंकार रहेगा तब अपने में ठहर न सकोगे तब तो पर के साथ परतन्त्र ही रहोगे।

सदगुरु कहते हैं कि सर्वसंग से असंग होकर अपने में गाओं शुद्धोहम, निराकारोहम निर्विकल्पोहम्।

देहाभिमान से बढ़ कर दूसरा पाप नहीं है इसीलिए इस पाप से मुक्त हो जाओ।

मैं अहंकारी जीव हूँ इस भ्रम को छोड़ दो।

सदगुरु कहते है कि देहाभिमान रूप पाश को बोध स्वरूप ज्ञान से काट डालो।

जो कुछ तुमने माना है वही हो गए हो वास्तव में तुम ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आदि नहीं हो। ज्ञान में जागकर देखोगे तब अपना सही पता होगा। अनात्मा का संग, आत्म ज्ञान से हटा दो। मान करके ही अहंकार, हिन्दू, मुसलमान ईसाई यहूदी बन रहा है।

जो मोह रूपी रात्रि में सोये हैं, जो सुखद-दुखद स्वप्नों में भ्रमित हैं, जो तन में, परिवार में, भूमि, भवन, धन ऐश्वर्य में अटके हुए हैं उन्हें मूढ़ कहा गया है। जो विनाशी में अविनाशी को, जड़ में नित्य चेतन को, अनित्य में नित्य को, क्षण-क्षण के पीछे शाश्वत को और कण-कण के पीछे महान को देख रहे हैं उन्हें ही श्रुति स्मृतियों में जागे हुए महापुरुष कहा गया है।

करोड़ों मूढ़ों में कोई विरला ही जागकर देखने वाला दूसरों को जगाता है लेकिन इन जागे हुए महापुरुष की ध्वनि भीड़ नहीं सुन पाती, वही सुन पाते हैं जो आगे बढ़ गए हैं जिनके भीतर दुखाघातों के कारण बन्धनों से निकलने की अभिलाषा है और श्रद्धा जाग्रत हो रही है।

यही मनुष्य महापुरुष को देख पाते हैं इन्हीं को स्वतन्त्रता शान्ति मुक्ति का

सन्देश उपदेश प्रिय लगता है ऐसे ही लोगों को यह सुनाया जा रहा है कि यह तुम नहीं हो जो मानते आ रहे हो और यह कुछ भी तुम्हारा नहीं है जिसे अपना मान कर मोही, लोभी अभिमान बन रहे हो।

तुम लोभी, मोही, अभिमान सुखासक्ति, रागी द्वेषी इसीलिये बन रहे हो। क्योंकि तुमने जन्म लेने के बाद उन्हीं की सुनी है जो स्वयं मोही, लोभी, अभिमानी, विनाशी परिवर्तनशील सुखद संयोग के कामी थे।

अब उनकी सुनने का सौभाग्य सुलभ हुआ है जो ज्ञान में देख रहे हैं। जो निर्मोही, निर्लोभी, निष्कामी, निरभिमानी हैं।

ऐसे महापुरुष सावधान कर रहे हैं कि तुम मिली हुई देह को और देह से सम्बन्धित जनों को, भूमि, भवन, धन आदि पदार्थों को अपना मानते हो, यह कुछ भी तुम्हारा नहीं है। सद्गुरु की सुनते हो तो इसी समय अब तुम समझ लो कि

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असग्ङोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखीभव।।

भावार्थ - तू ब्राह्मण आदि जाति नहीं है। और तू चारों आश्रम वाला भी नही है। तू इन्द्रियों का विषय भी नहीं है। परन्तु तू असंग एवं निराकार विश्व साक्षी है- ऐसा जान कर स्वतन्त्र हो सुखी होजा।

अज्ञान उसे कहते हैं जो ज्ञान से ही निवृत्त हो जाता है ज्ञान में ही ज्ञान स्वरूप आत्मा का बोध हो जाता है।

अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चिदाभास को ही जीव कहते हैं। तुम जड़ नहीं हो चैतन्य स्वरूप हो, तुम आनन्द हो। चित्त को संकल्पों विकल्पों से अपने को क्षुभित न करो।

विनाशी नाम रूपों का ध्यान छोड़ कर हृदय में शान्त रहो। कुछ न करो और जो स्वतः नियमानुसार हो रहा है ज्ञान में उसे देखो।

जो हो रहा है उसे देखते रहो कर्ता न बनो यह पढ़ने सुनने में तो बहुत सरल है लेकिन जब तुम देखने को बैठोगे तब भीतर आने वाली और बाहर जाने वाली स्वासों को पांच मिनट ठहर कर देखना भी दुष्कर होगा।

आज से ही स्वतः चलने वाली स्वांस की गति को मन से देखते रहना, स्वास के बाहर जाने में नाभि को भीतर दबते देखना और भीतर स्वास के आते हुए नाभि को ऊपर उठते हुए देखना, इसी में मन लगाये रहना और कुछ भी सोच विचार न करना धीरे-धीरे देखने का समय बढ़ाते जाना छः महीने में ही अदभुत एकाग्रता तथा शक्ति केन्द्रित होने का अनुभव होगा।

तुम्हारा चित्त जितना शुद्ध होगा उतनी देर मन लगेगा, आरम्भ में कठिनता

होगी फिर भी धैर्य के साथ लगे रहने में क्रमशः समय बढ़ता जायेगा। भगवान ने गीता में कहा है बुद्धि में धैर्य धारण करके धीरे-धीरे उपराम होते जाओ और मन को परमात्मा में स्थिर करो अन्य पदार्थ का चिन्तन न करो।

श्रुति में आत्मा का वर्णन किया गया है :-

आत्मा उसे कहते है जो एक है, सब भेदों से रहित है, विभु है, सर्व का अधिष्ठान है जो नित्य मुक्ति है। आत्मा उसे कहते हैं जो माया और माया के कार्य देहादिकों से रहित है जो चैतन्य स्वरूप है, अक्रिय है, व्यापक है। आत्मा उसे कहते जो चेष्टा रहित है, असंग है, निष्पृह है, जिसमें कोई अभिलाषा नहीं है, जो शान्त है।

जो प्रवृत्ति, निवृत्ति से रहित है, अन्तःकरण के धर्मों से रहित है।
इस आत्मा के बोध के लिए बार-बार श्रवण मनन करना चाहिये।
सर्दी गमी की सुखद दुखद वेदना देह धर्म है।
भूख प्यास लगना प्राण के धर्म है।
बन्धन मोक्ष राग-द्वेष, शोक, मोह, लोभ आदि मन के धर्म है।
जन्म, मरण, कर्ता, भोक्ता, पाप, पुण्य यह अहंकार के धर्म है।
नित्य विज्ञानमानन्द ब्रह्म-आत्मा नित्य विज्ञान स्वरूप है, आनन्द-स्वरूप है।

आत्म-ज्ञान ही आत्मसाक्षात्कार का उपाय है। ब्रह्म आत्मा के अज्ञान से ही जगत की प्रतीति होती है और राग-द्वेष, मोह, ममता आदि दोष एवं बन्धन बढ़ते हैं।

जब चित्त कुछ चाहता है, शोक करता है, कुछ त्यागता है, कुछ पकड़ता है, प्रसन्न होता है, दुखी होता है, तब यही चित्त का बन्धन है। जब कुछ नहीं चाहता तब मुक्त है।

गुरु वाक्य

बाहर बहुत देख चुके हो बहुत प्रश्न कर चुके हो, अब दृष्टि को भीतर लौटाओ भीतर प्रश्न करो, मौन होकर उत्तर की प्रतीक्षा करो। समस्त भोग अज्ञान में हैं। पूर्ण त्याग तो ज्ञान में ही है। पूर्ण त्याग में ज्ञानी भी नहीं रह जाता है। केवल प्रेम शेष रहता है। ज्ञान वही जो सर्व को प्रकाशित करता है।

भगवान दत्तात्रेय ने गाया है

ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोहम्,

तुम भी गाओ, मैं ज्ञान स्वरूप अमृत हूँ आकाश के समान समरस हूँ। गुरुदेव यही समझाते हैं कि जिस ज्ञान में तुम अपने को देहमय, जाति मय, विनाशी नाम रूप मय मानते हो, उसी ज्ञान में निश्चय करो कि मैं इस विनाशी देह से चिदाकाश हूँ, सनातन हूँ।

तुम्हें गुरु-ज्ञानोपदेश सुन कर मनन करते हुए बाहर दृष्टा रह कर देखना है। आकाशवत विराट होना है।

तुम्हारे बिना कुछ किये ही बड़ा उपकार होगा जब तुम सदा शान्त रहोगे, आनन्दित रहोगे, परमात्मा की कारीगरी अथवा सर्वत्र तुम उसी की चमत्कार देखते हुए प्रसन्न रहोगे तब तुम्हें मनोरंजन के लिये सिनेमा, सरकस, नुमाइश देखने वालों पर आश्चर्य होगा क्योंकि तुम्हें ईश्वर की प्रकृति में सर्वत्र क्षण-क्षण अद्भुद सौन्दर्य का दर्शन होता रहेगा। तब तुम्हारे समीप रहने वाले पर भी यही प्रभाव पड़ेगा।

यह गुरु का निर्णय है- कि तुम ही तुम हो। अद्वितीय तुम ही हो। तुम अन्य कुछ भी नहीं हो तुम्हें कुछ बनने की, होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम तो हो ही अब कुछ होना ही नहीं है।

भगवान के मतानुसार आत्म-तत्व के श्रोता और वक्ता बहुत दुर्लभ है। कथाओं के श्रोता बहुत सुलभ है।

सदगुरु वाक्य सुन रहे हो, पढ़ रहे हो इन्हें समझो अब प्रमाद में न पड़ो।

गुरुदेव कह रहे है :- सर्व भूतों में आत्मा को और सर्व भूतों को आत्मा में जान करके (मान करके नहीं) अहंकार रहित और ममता रहित होकर तुम सदा के लिये सुखी हो जाओ।

श्रुति स्मृतियों में भी आत्मा का वर्णन है :-

आत्मा शब्द, स्पर्श, रूपरसादिकों से रहित है, नाश से रहित है, आत्मा नित्य है, अनादि है, अनन्त है महात्तत्व से भी परे है, ऐसे आत्मा को जानकर पुरुष मृत्यु को पार कर जाता है।

आत्म तत्व को समझाने के लिए अति सूक्ष्म बुद्धि होनी चाहिए, अतिशुद्ध होनी चाहिये। मोह लोभादि से ग्रसित बुद्धि समझ नहीं सकती।

भोग्य वस्तुओं से वैराग्य होना कठिन है फिर सदगुरु का मिलना अट्टू श्रद्धा

होना भी कठिन है तत्पश्चात् तीव्र और शुद्ध बुद्धि का होना भी कठिन है, फिर कर्ता पने का अभिमान छूटना कठिन है फिर ब्रह्माकार वृत्ति होना भी कठिन है।

गुरु वाक्य

परमात्मा वहीं है जहाँ तुम स्वयं हो ठहरो और देखो। राग, विराग, आशक्ति विरक्ति, मोह, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, लोभ सभी ही अहंकार की सन्ताने हैं।

जब तक अहंकार कुछ बनना चाहता है, कुछ होना चाहता है वहाँ तक अज्ञान ही समझो।

तुम किसी को घृणा के द्वारा नहीं जीत सकते, केवल प्रेम के द्वारा ही किसी पर अधिकार प्राप्त कर सकते हो। प्रेम भी यदि थोड़ा रहेगा तो बन्धन कारी होगा, प्रेम यदि भरपूर होगा, निष्काम होगा वहीं बन्धन न होगा।

ज्ञान में प्रेम को पदार्थों से मुक्त करो

प्रेम का अनन्य श्रोत्र परमात्मा ही है। श्रोत के बाहर होते ही जो प्रेम की धारा है उसे ही विद्वान जन प्रीति कहते हैं।

प्रीति रूपी धारायें अनेक हो सकती हैं। प्रीति की धारा ही तन मय, धन मय, भवन, भूमि मय, रूप मय, नाम मय तथा माता-पिता, पति पत्नी, पुत्र कलत्रमय बन जाती है। प्रीति ही काममय, लोभमय, मोहमय बन जाती है। पूज्य भाव के साथ यह प्रीति ही गुरुमय, देवतामय और भगवद् नाममय, भगवद् लीलामय, भगवद्धाम अर्थात् प्रीति ही राममय, कृष्णमय अथवा अपनी मान्यतानुसार प्रियतम इष्टमय हो जाती हैं।

प्रीति जहाँ से प्रभावित है वह नित्य अविनाशी है लेकिन जिसकी ओर प्रभावित होकर जिससे तद्रूप तदाकार हो जाती है वह पदार्थ अनित्य है, विनाशी है यह परिवर्तनयुक्त है, मायिक है।

प्रीति ही प्रत्येक प्राणी के लिए सुखमय है यदि प्रीति विनाशी क्षणभंगुर परिवर्तन होने वाले नाम रूपों से न होती तब तो वियोग का, हानिका, अभाव का कभी दुःख होता ही नहीं।

पढ़ने, सुनने वालों को इसी समय विचार कर लेना चाहिए कि आज भी जहाँ कहीं भी जिस किसी के संयोग का सुख प्रतीत होता है वह प्रीति होने के कराण है और यह भी देखना चाहिए कि जब कभी प्रीति पात्र से सम्बन्ध टूटेगा, वियोग होगा तब वियोग के दुःख से कोई ऐसा है जो दुःखी न होने देगा?सुखी व्यक्ति को दुख से बचने की तैयारी अभी से कर लेना ही बड़ी बुद्धिशीलता का परिचय है लेकिन लाखों श्रद्धालु गुरु वाक्यों को पढ़ते सुनते हुए भी सदा सुखी रहना चाहते हैं लेकिन निश्चित होने वाले सम्बन्ध विच्छेद के दुख से बचने की तैयारी नहीं करते। यही मूढ़ता है और ऐसी मूढ़ता जिस श्रद्धालु ने त्याग दी है वही सत्संगी है।

सांसारिक विनाशी वस्तुओं तथा व्यक्तियों के नाम रूप में इतना राग दृढ़ हो गया है कि नहीं चाहते हुए भी ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध, घृणा निन्दा आदि दोष व्यवहार में चलते ही रहते हैं।

सारी विद्वता, पाण्डित्य, धर्म ज्ञान एक ओर प्रदर्शन मात्र के लिए दिखाई देता है। त्याग एवं प्रेम हो ही नहीं पाता।

सन्त कहते हैं -

सोई ज्ञानी, सोई गुणी, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित्त भई, राग द्वेष की हानि।।

समस्त बुराइयों की जड़ है विजातीय द्रव्यों से चित्त का रंग जाना।

भगवान शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों को छोड़कर आँख, कान, नाक, मुख बन्द करने को नहीं कहते, भगवान तो राग, द्वेष-रहित होकर अपने को स्ववश में रखकर संसार में रहने की कला समझाते हैं।

परमात्मा से प्राप्त प्रेम में विनाशी पदार्थों को भर लेना ही रागी बन जाना है। अब इस प्रेम को परमात्मा की ओर लौटना ही अनुरागी होना है।

सुनते सुनते गुरु वचनों में प्रीति की अद्‌भुत महिमा श्रद्धावान ही समझ पाते हैं। हमें सावधान किया गया है कि देख लेना जब तुम कुछ भी हृदय से चाहते हो तब प्रीति से ही चाहते हो। तुम्हारे हृदय में प्रीति अविनाशी है परन्तु जगत की सभी वस्तु विनाशी है। यह प्रीति ही वस्तुमय हो जाती है, इसीलिए तुम जिसे चाहते हो वही अति सुखद सुन्दर प्रतीत होता है। उसमें जो भी सौन्दर्य दीखता है जो भी सुखाभास होता है वह उस वस्तु का नहीं होता, वह केवल प्रीति का ही होता है और जब कभी प्रीति, उस वस्तु, व्यक्ति से हटती है तब न तो कुछ सुन्दर दीखता है न सुखद प्रतीत होता है। फिर तो उसी वस्तु व्यक्ति से घृणा होती है उसकी निन्दा की जाती है उस पर क्रोध होता है द्वेष होता है।

जिस प्रकार मिश्री या शक्कर के संयोग से प्रत्येक खाद्य या पेय पदार्थ मीठे लगते हैं, वह मधुरता पदार्थ की नहीं होती, शक्कर की होती है इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति प्रीति के संयोग से सुन्दर सुखद प्रतीत होते है। लेकिन यथार्थ में कुछ भी न सुन्दर है न सुखद है।

क्या तुम्हें याद रहेगा कि प्रीति अविनाशी है और जिसे प्रीति में स्वीकार कर लेते हो वह सांसारिक वस्तु व्यक्ति सभी कुछ विनाशी है। विनाशी के सम्बन्ध-विच्छेद होने पर अविनाशी प्रीति रुलाती है, विनाशी वस्तु दुःख नहीं देती, प्रीति के कारण ही दुःख होता है।

अभी विचार करो तुम्हारे हृदय में जो प्रेम है यह तुम्हारे द्वारा बनाया हुआ नहीं है। यह प्रेम परमात्मा का है। इस प्रेम में तुम जन्म लेते ही विनाशी वस्तुओं को अर्थात् जो तुम्हें प्रिय प्रतीत हुआ, उसी को भरते आ रहे हो। तुम्हारे हृदय का प्रेम विनाशीमय बन रहा है। अब तुम सर्वोपरि महान सच्चिदानन्द की महिमा सुनकर यदि मानोगे तब तुम्हारा यही प्रेम 'अविनाशी परमात्मा मय होगा तभी तुम्हें परम विश्राम प्राप्त होगा। तब कहोगे- 'पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।'

यदि तुम गुरु कृपा से ज्ञान द्वारा देखने के लिए सावधान रहो तब तो तुम अपने परिवार के माने हुए सम्बन्धित जनों को परमात्मा की विभूति रूप में ही पाओगे। क्योंकि जिस किसी व्यक्ति में तुम्हारा हृदय आकर्षित होता है उसमें परमात्मा के ही प्रेम का अथवा परमात्मा के ज्ञान का एवं सद्‌गुणों का ही सौन्दर्य

आकर्षित करता है।

दुकानों में कहीं-कहीं सुन्दर साड़ियों से सज्जित बहुत ही सुन्दर स्त्री की मूर्ति खड़ी कर दी जाती है, आकृति बहुत सुन्दर है परन्तु परमात्मा की चेतन आत्मा अथवा परमात्मा का प्रेम ज्ञान या सद्‌गुण नहीं दीखता इसलिए उस मूर्ति को कोई स्नेह नहीं करता।

जहाँ कहीं मन सम्मोहित हो, आकर्षित हो वहीं परम प्रभु की कलाओं का अनुभव करो, नमस्कार करो।

सद्‌गुरु समझाते हैं कि परमात्मा सुलभ ही है परन्तु अपनी मान्यता से दूर प्रतीत होता है।

जहाँ तुम विकारों के विचारों के पार हुए, जहाँ तुमने अपने ऊपर से अहंकार का भार उतारा वहीं परमात्मा होगा।

प्रेम की अनेक रश्मियाँ संसार में माता-पिता पति-पत्नी, पुत्र, भूमि, भवन धन पदाधिकार मय बन रही हैं इस प्रकार प्रेम विनाशी वस्तुओं व्यक्तियों से सम्बन्धित धारा प्रवाह संसार में बह रहा है यही धारा प्रवाह जब चेतना केन्द्र परमात्मा की ओर लौटता है तभी वासना ही उपासना हो जाती है। धारा ही प्रभु की आराधना बन जाती है। प्रेम की सारी शिरायें अर्थात रश्मियां जब लौट कर परमात्मा प्रियतम को चारों ओर से घेर लेती हैं तब यह महारास हो जाता है।

जो साधक रास महारास का दिव्य रसानन्द अनुभव करना चाहते हैं वह प्रेम की धारा को राधा रूप में देखते हैं।

प्रेम ही वासना पथ से धारा बनता है और प्रेम ही उपासना द्वारा राधा स्वरूप हो जाता है। इसे ही भक्त श्री राधे जी की कृपा कहते हैं।

केवल प्रेम का रह जाना ही परमात्मा को पा लेना है।

अहं के आकार ही परमात्मा की बीच में दीवाल बने रहते हैं मैं और मेरा यही अहं के आकारों की परिधि है।

तुम गुरु वाक्यों के श्रवण द्वारा जानने योग्य को जानना चाहते हो तो इस प्रेम रूपी महान निधि को जानो। यह ऐसी सम्पदा है कि चाहे जितने श्रोतों में यह प्रभावित हो यह कभी घटने चुकने वाली नहीं है।

इसी लिए संसार के किसी पात्र में तुम पूर्णतया नहीं भर सकते। प्रेम उसी में पूरा-पूरा समायेगा जिसकी कोई सीमा न हो, कोई दीवार न हो ऐसा पात्र केवल परमात्मा ही है जहाँ प्रेम पूर्ण होता है। उसी परमात्मा से ही पूर्ण प्रेम, अपूर्ण पात्रों की ओर श्रोत बन कर बहता रहता है। इसी लिए संसार में किसी प्रेम पात्र से पूर्ण तृप्ति होती ही नहीं इधर प्रेम की धारा कभी सूखती ही नहीं उधर संसार के पात्रों द्वारा प्रेम

परम तृप्ति प्रदान करता है।

विनाशी पदार्थों से प्रीति को लौटा कर आत्मा की ओर अपने भीतर मोड़ देना ही परमात्मा के योगानन्द की साधना है।

यदि तुम सावधान होकर समझ लो तो देखते रहना, मोहमयी, लोभमयी, कामनामयी, सुखोपभोगमयी प्रीति तुम्हें विनाशी वस्तु व्यक्ति में अटकाये रहेगी लेकिन श्रद्धामयी, सदगुणमयी प्रीति एवं गुरुज्ञानमयी प्रीति तुम्हें मुक्ति में, शान्ति में और आनन्द में ले जायेगी।

हमें यह भी समझाया गया है कि जिसे तुम खोजते हो वह परमात्मा नित्य निरन्तर वहीं सुलभ है जहाँ से तुम खोजना आरम्भ करते हो।

परमात्मा निरन्तर वर्तमान क्षण को लिए हुए विद्यमान है परन्तु खोज में यात्रा आरम्भ करते ही वर्तमान में न रह कर तुम्हारा चित्त भविष्य में तल्लीन हो जाता है इसीलिए यह गुरु वाक्य स्मरणीय है कि चाह के उठते ही चित्त वर्तमान में नहीं होता।

जो वर्तमान में है यह ध्यान से ज्ञान में अभी देखा जा सकता है, अनुभव में आ सकता है लेकिन चाह की पूर्ति जब होगी तब भविष्य में ही होगी और वह ध्यान मात्र से न होगी प्रयत्न से ही होगी, कर्म से होगी।

इसीलिए भगवान कहते हैं कि यदि मुझ परमात्मा को चाहते हो तब तो मैं स्मरण मात्र से ही, ध्यान से ही सुलभ हूँ।

गुरुजन कहते हैं कि जो कुछ चाहने से कभी पाना है इसके लिए तुम निश्चय कर लो कि अब हमें वह चाहिये ही नहीं जो चाहने से पाया जाता है वह नित्य निरन्तर विद्यमान अखण्ड सत् परमात्मा न होकर कुछ और ही होता है।

देवी भागवत में कहा है कि-आत्मा सदैव शुद्ध और मुक्त ही है। वह कदापि बन्धन को प्राप्त नहीं होता। बन्धन और मोक्ष मनोमय अहंकार के धर्म हैं। मन के शान्त होने पर बन्धन-मोक्ष का नाम भी नहीं रहता है। चेतन स्वरूप आत्मा में मन को लय करने से शान्ति सुलभ हो जाती है।

अभी पढ़ा या सुना कि मन को चेतन स्वरूप आत्मा में लगाना चाहिए, मन के शान्त होते ही शान्ति है लेकिन हम लोग इसी प्रकार पढ़ते सुनते कहते रहेंगे लेकिन वैसा ही करेंगे नहीं तब अशान्ति तो मिटेगी नहीं ऊपर-ऊपर पाठ पूजा जप अध्ययन चलते रहेंगे और भीतर मन में सुखोपभोग की तृष्णा चलती रहेगी।

अष्टावक्र जी कहते है जब मन कुछ नहीं चाहता है, जब कुछ नहीं सोचता, जब कुछ नही छोड़ता या जब कुछ नहीं ग्रहण करता और जब प्रसन्न भी नहीं होता, शोकित भी नहीं होता तब मुक्त ही है।

जब मन किसी दृश्य में आसक्त है तभी बन्धन है, जब मन किसी दृश्य विषय में नहीं लगा है तब मुक्त ही है। मुक्ति के लिए कहीं जाने की तथा भागने की आवश्यकता ही नहीं है केवल मन में ही मुक्त होना है। मन को अपना नहीं मानना है और मन की बात नहीं माननी है।

इस जग में कितना ही तुम परतन्त्र विचर के देख लो।
तृप्ति न होगी फिर भी कौतुक इधर-उधर के देख लो।।
जिस सुख को यह मन अपनाता, वही सत्य से विमुख बनाता।
सुख ही है सर्वत्र नचाता, सुखासक्त मानव दुख पाता।
नहीं समझ में आये तो, तुम भी जी भर के देख लो।।
जिसको तुमने अपना माना, उसका है कुछ नहीं ठिकाना।
निश्चित है जिनका छुट जाना, व्यर्थ न उससे मोह बढ़ाना।
जो आया है जायेगा, यह धीरज धर के देख लो।
कर्मबीज जो बोया जाता, कई गुना बढ़ कर वह आता।
जैसा देता वैसा पाता, स्वयं जीव निज भाग्य विधाता।
यदि तुमको विश्वास न हो, तो कुछ भी करके देख लो।।
अपना हृदय प्रेम से भरना, सम्बन्धित की सेवा करना।
सद्गुरु ज्ञान बुद्धि में धरना, अहंकार के पार उतरना।
तन में रहते हुए पथिक तुम, मन से मर के देख लो।

कोई-कोई पूछने लगते हैं कि क्या भगवान के दर्शन हो सकते हैं? उन्हें सावधान होकर मोह निद्रा से जाग कर सुन लेना चाहिए कि तुम्हारी दृष्टि के सामने जो कुछ भी दीख रहा है उसी में परमात्मा है। परमात्मा ही सर्व रूपमय है वही प्रकृतिमय है। भगवान ने बता दिया है कि मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है जहाँ कहीं भी सौन्दर्य का, माधुर्य का, ऐश्वर्य का आकर्षण है वहाँ मुझे ही पहिचान लेना। सारा विराट विश्व मेरी ही साकार मूर्ति है। सर्वत्र गति के रूप में परमात्मा की शक्ति का ही दर्शन मिल रहा है फिर भी हम लोग दृष्टि हीन होने के कारण परमात्मा को समझ नहीं पाते।

हम सबके शरीर के साथ, मन के साथ, बुद्धि एवं अहंकार के साथ परमात्मा के कितने चमत्कार घट रहे हैं फिर भी हम बुद्धि की जड़ता मूर्खता के कारण तथा मन की मूढ़ता के कारण देख ही नही पाते।

हम लोग अपने माने हुए पसन्द किये हुए भगवान का जो कि सामने नहीं हैं-

उन का ध्यान करते हैं। जो परमात्मा सर्व रूपमय होकर, जो सूर्य अग्निमय होकर हमारे सामने होता है उसे ध्यान से नहीं देखते- यही बुद्धि की अशुद्धि है।

परम गुरु भगवान कर रहे हैं कि कोई मनुष्य दोष बुद्धि से रहित होकर श्रद्धा के साथ मेरे मत के अनुसार चलता है वह कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

हमें यह भी समझाया गया है कि जब कोई भी कार्य करो तब भीतर देख लो कि यह कर्म अहंकार द्वारा हो रहा है या भगवान के मतानुसार हो रहा है?

जब तक अहंकार अपनी कृतियों से प्रसन्न होगा और अपनी प्रसन्नता के लिए यदि पूजा, जप, तप, सेवा, दान, दर्शन आदि शुभ कर्म करेगा तब तो यह अहंकार ही सेवा का शुभ कर्म का, दर्शन का भोगी बना रहेगा और परमात्मा के नित्य योग का आनन्द तुम्हें नहीं सुलभ होगा। इसीलिए सबसे प्रथम तुम अपने को जान लो। आत्म ज्ञान द्वारा अज्ञान से मुक्त हो जाओ तथा ज्ञान रूपी सूर्य तुम्हारे भीतर ही परमात्मा को प्रगट कर देगा। जब तुम्हारी बुद्धि देहमय, जड़मय न रह कर आत्मामय होगी जब मन आत्मा में तन्मय होगा, तब आत्म ज्ञान द्वारा ही तुम पाप रहित होकर परमगति को प्राप्त हो जाओगे।

भगवान के मतानुसार अन्तःकरण की शुद्धि अनेक जन्मों में हो पाती है लेकिन वह शुद्धि अपने ही प्रयत्न से होती है, कोई दूसरा नहीं करता।

जो साधक विशेष शक्ति सम्पन्न है वह दृढ़ संकल्प से तीव्र प्रयत्न द्वारा अभ्यास करने पर जितनी शीघ्रता से पापों को अर्थात् काम, क्रोध, लोभादि का त्याग करने में सफल हो जाएगा उतनी ही शीघ्रता से इसी जन्म में परमात्मा के योग की अनुभूति के लिए परम गति हो जाएगी।

कोई साधक परमात्मा के योगानन्द के लिए गति प्राप्त करते हैं, कोई विशेष संयमी सद्गति प्राप्त करते हैं, पूर्ण प्रेमी प्रयत्न द्वारा सद्गति प्राप्त करते हैं। कामी, क्रोधी, लोभी अधोगति को प्राप्त होते हैं।

भगवान ने उस ज्ञानी को अत्यन्त प्रिय कहा है जो भगवान को तत्त्वतः जानता है। भगवद्तत्व का ज्ञानी ही सर्व में परमात्मा को जानता हुआ अपने कर्मों द्वारा परमात्मा की ही पूजा करता है उसी को दुर्लभ महात्मा कहा गया है।

तुम्हें भगवान के प्रिय होकर रहना है तो भगवान इस समय और निरन्तर तुम्हारे साथ सच्चिदानन्द स्वरूप में रहते है इसे शुद्ध बुद्धि द्वारा समझ लो।

ज्ञान में अन्धविश्वास से मुक्ति

अन्धविश्वास मन से होता है, विचार बुद्धि से होता है।

अन्धविश्वासी अज्ञान में चलता है, विचारवान ज्ञान में चलता है।

अन्धविश्वासी मान कर सुखी होता है, विचारक जान कर तृप्त होता है।

अन्धविश्वासी ठगा जाता है धोखा खाता है, वह शक्ति समय खोकर पश्चाताप करता है।

विचारक ज्ञान में देखते हुए सावधान हो जाता है और विवेक के द्वारा शक्ति का समय का सेवा में तथा जीवन के सुन्दर निर्माण में सदुपयोग करता है।

अन्धविश्वासी व्यक्ति में कामना पूर्ति का तथा किसी प्रकार के लाभ का लोभ रहता है।

विचारक विवेकी सेवा के, दान के, अवसर पकड़ता है और उदारतापूर्वक शुभ सुन्दर के दान से सन्तुष्ट होता है।

अन्धविश्वासी अपने अहंकार को एवं अपने सम्बन्धित जनों को सुखी रखने के लिए सब कुछ करता है।

विचारक विवेकी स्वयं का हित और सभी के हित का ही ध्यान रखता है।

अंधविश्वासी अपने सुख के लिए उसी को अपना मानता है जिससे कुछ पाने की आशा होती है।

विचारक अपना निरीक्षण करता है अपने आप को ज्ञान में जानने का ही प्रयत्न करता है।

कहीं-कहीं बाजा बजाते हुए फूल बरसाते हुए शव ले जाते हैं। इसका भी यही अर्थ है कि हम लोग बड़े आनन्द से अविनाशी आत्मा को देह से मुक्त समझ कर बिदा कर रहे हैं।

जो लोग मृत प्राणी की सन्तुष्टि के लिए करते हैं और स्वयं उसके द्वारा मिलने वाले सुख की या लाभ की हानि के लिए शोकित होते हैं वे बहुत ही अज्ञान में हैं।

तुम श्रद्धालु हो तो अपना दृष्टिकोण अभी से बदल दो। यह न सोचो कि हाय अब मैं अनाथ हो गया, कैसे चलेगा? मेरा सुख छिन गया? ऐसा न सोचकर यह विचार करो कि इतना संयोग मिल गया, इतना देख लिया, इतना सुख भोग लिया, न मिलता तो क्या देखते ? क्या भोगते? यह सोच कर हर्ष मनाओ कि जो मिला वह मुफ्त मिला, बहुत मिला। धन्यवाद दो प्रभु के विधान को। नश्वर शाश्वत को एक साथ देखो और नश्वर से अनासक्त रहो, शाश्वत आत्मा के अनुरागी रहो।

करोड़ों मोही, अहंकारी अपनी मूढ़ता को नहीं समझ पायेंगे। भेड़ों के पीछे भेड़ो की तरह चलते रहेंगे। यदि तुम सन्त के संगति में हो, भगवान की बात मानना चाहते हो तो समझ लो कि तुम्हारे जितने भी बन्धन हैं अथवा जो भी पराधीनता है जो भी दुःख है वह तुम्हारी मूढ़ता मान्यता के कारण है। यह बन्धन की बेड़ियाँ तुम्हीं ने मन से गढ़ ली हैं। तुम चाहो तो अपनी मुक्ति के लिए तोड़ सकते हो। बहुत साहस की अपेक्षा है।

अन्धविश्वास में अपने की, अपने अनुकूल स्वजनों को, अपने धर्म को, भगवान को, ईश्वर को, मालिक को मान लिया जाता है। बुद्धि से माने हुए को जाना जाता है।

विवेकी विचारक पुरुष श्रद्धा पूर्वक स्वयं को, सत्य को, ईश्वर को, धर्म को जानता है।

विचारवान विवेकी तो अन्धविश्वासी व्यक्ति की गति को तथा उसके अन्तिम परिणाम को जानता है, लेकिन विश्वास रखने वाला पुरुष, विचारक विवेकी की सद्गति को, सद्लक्ष्य को नहीं जान पाता क्योंकि विश्वास के आगे अभी ज्ञान नहीं है।

अन्धविश्वासी व्यक्ति पहले धर्मात्मा अथवा साधक भक्त बनता है और फिर मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर बनाता है।

विचारवान विवेकी न बनता है, न बनाता है, वह तो ईश्वर के द्वारा बनाये हुए, कुदरत के द्वारा गढ़े हुए, प्रकृति के द्वारा सजे हुए, देह-रूपी मन्दिरों को देखता है।

विश्वासी व्यक्ति ईश्वर की मूर्ति बना कर उसमें भगवान की भगवती की प्रतिष्ठा करता है।

विवेकी विचारक, ज्ञान में परमात्मा को, प्रत्येक देह-रूपी मन्दिर में प्रतिष्ठित अनुभव करता हैं

अन्धविश्वास द्वारा कोई सत्य परमात्मा तक नहीं पहुँचता क्योंकि परमात्मा को पाने का कोई मार्ग नहीं है, वह तो वहीं विद्यमान है जहाँ से सभी मार्ग आरम्भ होते है।

बुद्धि का विकास न होने तक किसी भी बालक को अपने से अधिक सयाने बुद्धिमान पर अन्धविश्वास करना ही होगा।

बुद्धि विकसित होने पर भी यदि विद्या नहीं है तब किसी विद्वान पर विश्वास करना ही होगा।

अपने जीवन को बन्धनों, से दुःखो से, भय से, चिन्ता से, अशान्ति से मुक्त

करने के लिए जो बन्धनों मुक्त, निर्भय हैं, जो चिन्ता रहित ज्ञानी है, जो कि सत-असत् को, धर्माधर्म को, जड़-चेतन को, पाप-पुण्य को जानते हैं- ऐसे तत्वदर्शी महात्मा पर विश्वास करना ही होगा।

यदि कोई बालक अपने ही समान बालक पर विश्वास करें यदि कोई विद्याहीन व्यक्ति अपने ही समान विद्या से वंचित पर विश्वास करे यदि कोई विद्याभिमानी अपने ही समान विद्वान पर विश्वास करे यदि कोई अन्धा व्यक्ति किसी अन्धे पर विश्वास करके जिस गति को प्राप्त होगा वही गति तत्वदर्शी, आत्मदर्शी ज्ञानी पर विश्वास न करने वालों की होती है। यह गुरु सम्मति है कि तुम विनाशी देह पर विश्वास न करो। तुम किसी की इन्द्रियों पर विश्वास न करो। तुम किसी के मन पर विश्वास न करो, किसी अहंकार का विश्वास न करो। केवल गुरु ज्ञान पर विश्वास करो, चेतन स्वरूप अविनाशी आत्मा-परमात्मा पर विश्वास करो। इसे ही जानो।

चतुर किसान भूमि में बीज बोता है और विश्वास करता है कि बीज उगेगा ही, बढ़ेगा ही समयानुसार एक बीज अनेक गुना बढ़ कर मिलेगा ही। लेकिन किसान को यह ज्ञान नहीं होता है कि कौन सा बीज किस भूमि में बोना चाहिए, साथ ही किस नियम से, किस मात्रा में बोना चाहिए, फिर उसकी विधि पूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

कोई मूर्ख, मूढ़ आदमी ऊसर में बीज बोए या सूखी भूमि में बोए, या असमय बोए या सड़े-घुने बीज बोए और विश्वास करे कि कई गुना बढ़ कर मिलेंगे तब तो उस अन्धे विश्वासी को कुछ न मिलेगा।

एक रोगी, रोग निवृत्ति के लिए औषधि सेवन करता है और रोग-निवृति के लिए विश्वास करता है उसे भी औषधि का ज्ञान होना चाहिए, रोग के कारण का ज्ञान होना चाहिए, विधि का, मात्रा का ज्ञान होना चाहिए, और धैर्य पूर्वक परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि स्वयं औषधि का ज्ञान नहीं हो तब ज्ञानी वैद्य की सम्मति लेनी चाहिए।

गुरुज्ञान में जानते हुए सत्य के नियमों पर विश्वास रखना कल्याणकारी है लेकिन ज्ञान के अभिमान में मन से ही किसी वस्तु पर, व्यक्ति पर, बाहरी आकृति पर, वेष पर तथा विद्वान की बाह्य सजावट, बनावट पर, शब्द चातुरी पर सम्मोहित होकर अपने तन, धन, मन से सेवा करते हुए कामनापूर्ति के लिए विश्वास करना सद्विवेक के विपरीत है।

यदि तुम सभी में ईश्वर में, परमात्मा, भगवान को मानते हुए प्रत्येक कर्म भगवान के लिए करते हो, भगवान को ही प्रेम में चाहते हो तब तुम्हारे विश्वास का उत्तर परमात्मा ईश्वर के विधान से ही मिलेगा। क्योंकि सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमेश्वर

को तुम्हारी भावना का एवं सरल विश्वास का पता होना ही चाहिये और उसी की ओर से पूर्ति भी होनी चाहिए।

अनेक कथायें सुनने, पढ़ने में आतीं हैं कि किसी मूर्ति में भगवान पर विश्वास करने वाले प्रेमी को उस मूर्ति के द्वारा ही कामना की पूर्ति हुई। भगवान पर विश्वास करना बड़े पुण्य की बात है।

किसी सन्त महात्मा में परमात्मा के ज्ञान एवं दिव्य गुण अथवा भगवान की शक्ति होने का विश्वास रखने वालों की आत्म-कल्याण की साधना में अलौकिक चमत्कार घटित हुए लेकिन जो सन्त महात्मा सद्‌गुरु से सांसारिक धन, भोग, संयोग की कामना पूर्ण होने का विश्वास करेंगे उन्हें पुण्यों का सहारा लेना होगा।

जो अपने आराध्य प्रभु, परमात्मा से ज्ञान, ध्यान, प्रेम की पूर्णता प्राप्त होने का विश्वास करते हैं, जो अज्ञान की, पापों की निवृत्ति एवं बुद्धि योग अथवा कर्म-योग, ज्ञान-योग, भक्ति-योग प्राप्त होने का विश्वास रखते हैं उन्हें भगवद्‌कृपा से अवश्य प्राप्त होता है। भगवान से जो मिलता है वह भगवान पर विश्वास रखने से प्राप्त होता है और संसार से मिलता है वह भगवान के प्राकृतिक नियम से प्राप्त होता है। कर्म करने से प्राप्त होता है।

कहा जाता है कि बहुत द्वार भटकने पर सही द्वार मिल जाता है। सही द्वार पाने के लिए गलत द्वार भी सहायक होते हैं। अन्धविश्वास भटकाता है तब ज्ञान का द्वार मिलता है।

असाधुता की सीमा पार करके कोई साधुता में पहुँचता है। दोषों का दुष्परिणाम भोगकर कोई सद्‌गुण सम्पन्न होता है। अज्ञान में भटक कर कोई ज्ञान में पहुँचता है। अज्ञान में पकड़ना होता है ज्ञान में देखना होता है।

आसाधुता और असन्तों से धोखा खाकर कोई साधु सन्तों को प्राप्त करता है। नकली भगवान को पूजते-पूजते सत्य भगवान को समझ पाता है। आसक्तियों की पराधीनता भोग कर कोई स्वाधीन होता हैं अज्ञानी पराधीन है, ज्ञानी स्वाधीन है।

जो कुछ हो रहा है, सब ठीक ही है। जब जो कुछ होना चाहिए वही हो रहा है दैवी विधान से हो रहा है।

अज्ञान में अन्धविश्वास के द्वारा ठगे जाना चाहिए, धोखा होना चाहिए, शक्ति, श्रम व्यर्थ होना चाहिए, फिर होश में अपनी भूल का, भ्रम का, अज्ञान का, मूढ़ता का ज्ञान होना चाहिए फिर पश्चाताप होना चाहिए, तत्पश्चात्‌ अहंकार के अभिमान को हटाने के लिए, बृद्धि के अज्ञान को तथा चित्त के भ्रम को एवं मन की मूढ़ता को मिटाने के लिए तत्वज्ञानी सदगुरु की शरण जाना चाहिए। यही सब क्रम से होता है।

अन्धविश्वासी अहंकार, सत्य को परमात्मा को मानकार कहीं आलसी बना

रहता है कहीं प्रमाद की पुष्टि होती रहती है। वह अपनी मान्यता में अटक कर मूढ़ बना रहता है लेकिन कुछ समय पश्चात्‌ ईश्वरी विधान से सुनिश्चित प्रतिकूलतायें तथा न चाहते हुए दुखाघात उस विश्वासी को जिज्ञासु बनाते हैं और वह मानते-मानते जानने के लिए व्याकुल होता है तभी सद्‌गुरु की आवश्यकता समझता है वहीं से श्रद्धा की जागृति होने लगती है।

जहाँ तक कोई मनुष्य अपने को हिन्दू या मुसलमान या ईसाई, यहूदी अथवा जैन या बौद्ध आर्य या सनातनी मानता है वहाँ तक व विश्वास के सहारे अन्धकार में पकड़े हुए का, अपनी स्वीकृतियों का, मोही या अभिमानी बन रहा है। उसे तब तक सही जानकारी नहीं होती जब तक विश्वासी व्यक्ति को सन्त सद्‌गुरु नहीं सुलभ होते ।

विश्वास करने वाला मन श्रद्धा के जाग्रत होने पर साधु सन्त गुरु पर भी विश्वास ही करता है, जान नहीं पाता और उसी साधु, सन्त, महात्मा पर विश्वास करता है जिनके बिना श्रम के दुआ वरदान पाने की आशा होती है। विश्वासी मन चमत्कारों में बहुत रीझ जाता है।

मनोमय अहंकार श्रद्धा को लेकर जिस प्रकार किसी पर विश्वास करता है और गुरु बनाता है, वही कुछ समय बीतने पर अन्धविश्वासी जनों का गुरु बन जाता है उन्हीं के लिए कहा गया है-

गुरु लोभी है शिष्य लालची दोनों खेलें दाँव।
कैसे तरना होयगा बैठ पत्थर की नाँव।।
बन्धे को बन्धा मिले छूटे कौन उपाय।
सेवा कर निर्बन्ध की पल में देय छुड़ाय।।

अन्धविश्वास रखने वाला मनोमय अहंकार जब गुरु बनेगा तब शिष्य को ज्ञान विचारक विवेकी होना पसन्द न करेगा।

विश्वास के सहारे मनोमय अहंकार मानकर चलता है और अपनी मान्यता के अनसुार ही अपने माने हुए लक्ष्य तक पहुँच पाता है और वह मन से सुखी तो होता है परन्तु पूर्ण नहीं होता।

विज्ञानमय पुरुष जानकार पूर्णानन्द का अनुभव करता है।

विश्वास में परापेक्षा रहती है ज्ञान में किसी की जिसे अपेक्षा नहीं रहती है वहीं स्वतन्त्र होता है।

धर्म और ईश्वर को लेकर जितनी लड़ाइयाँ हुई है वह अन्धविश्वास के कारण हुई है। ज्ञान में देखने वाले मन्दिर, मस्जिद, गिरजाधर के पीछे नहीं लड़ते।

कहा है कि तत्वज्ञान के उदय होने से जो सिद्धि प्राप्त होती है वह तप से,

तीर्थ स्नान से, जप से, दान से, अथवा अन्य किसी साधना से प्राप्त नहीं होती। जन्म के अन्धे को, कामातुर को, मदिरा पीने वाले उन्मत्त को और धन के लोभी को कुछ नहीं दीखता।

यह गुरु वाक्य जो हम अनेक श्रद्धालु जन पढ़ रहे है या सुन रहे है, इन वाक्यों को करोड़ो नर-नारी कई जन्म तक न सुनेंगे, नहीं पढ़ेगे। केवल श्रद्धालु ही सुनेंगे, पढ़ेंगे, समझेंगे।

आज के मानव समाज में देखा जाता है कि हर एक मनुष्य अवसर पर लोभवश धनी के आगे हाथ जोड़ देता हैं, निर्बल भी बलवान के आगे झुक जाता है, पदाधिकारी के आगे नेता के आगे नमस्कार कर लेता है, और संकट पड़ने पर तन, धन की रक्षा के लिये डाकू के आगे मस्तक झुका देता है, लेकिन श्रद्धा पूर्वक ज्ञान प्राप्ति के लिए किसी विरक्त, सन्त, महात्मा के आगे नत-मस्तक होने को लाखों जन उत्सुक नहीं है, क्योंकि श्रद्धा नहीं हैं।

श्रद्धावान लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वां परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति।। (गीता)

ज्ञान प्राप्ति के लिये जितेन्द्रिय होना, तत्पर होना और श्रद्धा का होना आवश्यक है तभी ज्ञान द्वारा शान्ति प्राप्त होती है। राग रहते ज्ञान नहीं होता। अतः तीव्र वैराग्य, तीव्र जिज्ञासा, तीव्र तत्परता से ज्ञान निष्ठा दृढ़ होती है। ज्ञान निष्ठा में ही शान्ति है।

शुभ अवसर बीते जाते है तुम बुद्धिमान मानव जागो।
अविविवेकी देर लगाते हैं तुम बुद्धिमान मानव जागो।
भोगों से जो कि विरक्त बन जो साँचे प्रभु के भक्त बने।
वे गुरुजन नित्य जगाते हैं तुम बुद्धिमान मानव जागो।
यह महा दुखद अज्ञान निशा इसमें सूझती न सत्य दिशा।
मोही जन समझ न पाते हैं तुम बुद्धिमान मानव जागो।
यह झूठें दुख-सुख के सपने जिनको तुम समझ रहे अपने।
सब मन के माने नाते हैं तुम बुद्धिमान मानव जागो।
जो जागे वही विरागी हैं वे सब दोषों के त्यागी हैं।
हम 'पथिक' उन्हीं की गाते हैं तुम बुद्धिमान मानव जागो।।

गुरु वाक्य

सांसारिक वासना को तुम भयानक रोग की तरह समझो, संयम को औषधि की तरह समझो, वासना रहित जीवन को ही स्वस्थ जीवन समझो। यदि तुम संसार को पार करना चाहते हो तो यहाँ की वासनाओं की सीमा को पार कर जाओ। संसारासक्त लोगों से दूर रहो। संसार की कितनी ही अच्छी वस्तु कोई दे किन्तु उससे राग न करो, उसकी प्रशंसा न करो और दुःख देने वाले से द्वेष न करो, उसका तिरस्कार न करो। परमात्मा के सच्चे प्रेमी बनो।

समस्त भय तथा हिंसा, एवं परिग्रह संग्रह और तृष्णा अज्ञान में हैं। स्वयं को न जानना अज्ञान है।

ज्ञान में जागो

सन्त सदगुरु द्वारा, श्रुति, स्मृति द्वारा, सदा से ही मानव को ज्ञान में जागृत होने की प्रेरणा मिलती रही है।

अज्ञान में पशु-पक्षी अथवा सभी जन्तु जागते हैं। संसार में ऐसा कौन प्राणी है जो अपनी कामना पूर्ति के लिए दिन में, रात्रि में जागते हुए अज्ञान का परिचय नहीं देता हो।

ज्ञान में केवल वही मनुष्य जागता है जो दुखों से, बन्धनों से मुक्त होना चाहता है। सुखासक्त भोगी भी जब तक पूर्ण दुखी नहीं होता तब तक ज्ञान में जागरण का संदेश एवं गुरु उपदेश नहीं सुनता। करोड़ों मनुष्य ज्ञान में जागने की बातें नहीं सुनते।

यह गुरु सन्देश उपदेश लाखों व्यक्ति नहीं पढ़ेंगे नहीं सुनेंगे। कोई हजार लाख में एक व्यक्ति जीवन में जागरण की चर्चा सुनता पढ़ता है। उन्ही लाखों में से आप हैं जिनके सामने यह पुस्तक है।

सन्त करते हैं। उसी को जागृत समझना जिसे विषय भोगों से विराग हो गया हो। रागासक्ति ही मोहनिद्रा में सोते रहने का परिचय देती है।

आज लाखों नर नारी तीर्थों में जाते हैं, स्नान करते हैं, उसमें से हजारों लोग मन्दिरो में दर्शन करते हैं उनमें से छट कर सैकड़ों नर-नारी पण्डितों से पुजारियों से नाम जप की, व्रत की, कीर्तन की, साधु महात्माओं के प्रति सेवा भाव की महिमा सुनते हैं, उनमें से बहुत कम लोग जप कीर्तन आसन व्रत आदि साधना भी करने लगते हैं परन्तु उन्हें यह पता नहीं चलता कि वे सब कुछ अज्ञान में ही कर रहे हैं गुरु ज्ञान का आश्रय लिया नहीं।

लाखों लोग मन मानी पूजा, पाठ, जप, कीर्तन, सत्संग, ध्यान, उपासना, योगसाधना करते हुए जीवन बिता रहे हैं परन्तु मन में जो मोह, ममता, लोभ, अभिमान, कामादि दोष हैं वह नहीं छोड़ पाते इसीलिए साधना के द्वारा जो होना चाहिये वह नहीं होता बल्कि जो नहीं होना चाहिये वह होता है। अन्त में न चाहते वियोग का, हानि का, मृत्यु का दुःख भोगना पड़ता है।

जो श्रद्धावान इस प्रकार की चर्चा सुनते है या पढ़ते हैं उन्हें कुछ ठहरकर अपनी ओर विचार दृष्टि से देखना चाहिये कि यही अज्ञान अपने साथ भी घटित हो रहा है या नही।

तन सुखाय पञ्जर करे धरे रैन दिन ध्यान।

तुलसी मिटे न वासना बिना विचारे ज्ञान।।
जावे मथुरा द्वारिका या जावे जगन्नाथ।
सन्त संग श्रद्धा बिना कछु न आवे हाथ।।
सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम।
पलटू चहुँ दिशि पचि मरे घट ही में हैं राम।।

ईश्वर को, धर्म को मानने वाले लाखों व्यक्तियों में से कुछ ऐसे विचारवान जिज्ञासु होते हैं जो ईश्वर को, धर्म को, पूजा उपासना, साधन को मानकर ही सन्तोष नहीं करते बल्कि वह जानना चाहते हैं इसी प्रकार के लोग सन्तों महात्माओं के प्रति श्रद्धा रखते हैं उन्ही लोगों को यह गुरु सन्देश निर्देश गुरु उपदेश सुनाये जाते हैं और अपने-अपने घरो में अध्ययन करें- इसीलिये लिखे जाते हैं।

मानव समाज में सुखोपभोग के समान तथा धन, विद्या, भूमि, भवन वस्त्राभूषण, पद अधिकार लेने वाले तो सभी हैं ही, उनमें देने वाले भी बहुत हैं लेकिन सद्धर्म को तथा सत्कर्म को एवं सत्य जीवन निर्माण की साधना, उपासना, ध्यान, भजन को ज्ञान में दिखाने वाले कोई-कोई तत्व वेत्ता महात्मा हैं।

ऐसे महापुरुषों से जो सुनने समझने में आया है वही अपने साथियों को अथवा श्रद्धालु को बताया जा रहा है।

समाज में माता-पिता शिक्षक पण्डित पुरोहित आदि प्रेरणा तो सभी देते हैं लेकिन ज्ञान में देखते हुए दूसरों को देखने की प्रेरणा देने वाले और उसे स्वीकार करने वाले बहुत कम लोग हैं।

प्रकाशपूर्ण प्रेरणा न मिलने के कारण समाज अन्धकार में यात्रा कराता आया है आज भी करोड़ों लोग जो कुछ भी कर रहे हैं, अज्ञान अन्धकार में ही कर रहे हैं, उसी का परिणाम संघर्ष है, घोर अशान्ति है, सुखोपभोग के अन्त में दुख है, पराधीनता है।

हमें आरम्भ से ही समझाया गया है, सावधान किया गया है कि यदि तुम्हारी बुद्धि में दूर तक देखने की अथवा परिणाम देखने की क्षमता है तब तो सर्वप्रथम देह से सम्बन्धित आहार को शुद्ध सात्विक रक्खो। इन्द्रियों के द्वारा मन पर विषयासक्ति न बढ़ने पाये ऐसे विहार, आमोद-प्रमोद, विनोद से सावधान रहो। इसी प्रकार मन की इच्छा पूर्ति के परिणाम में बुद्धि, मोह, लोभ से ग्रसित न हो, इसके लिए पवित्र व्यवहार का ही पक्ष लो और अहंकार अपनी कृतियों का भोक्ता बनकर कर्तापने के अभिमान में सत्य से विमुख बना रहे इसके लिए गुरु ज्ञान का आश्रय लिये रहो।

तुम विचारवान हो तो साधना से सम्बन्धित प्रचलित पद्धतियों अथवा धर्म से प्रचलित प्रथाओं में और पूजा प्रार्थना से सम्बन्धित दैनिक क्रिया कलापों में विचार

करो कि अज्ञानवश दोष कितने बढ़ गये हैं और गुण लाभ कितने छिप गये हैं।

तुम अन्य लोगों की तरह धर्म के प्रचार अथवा रामायण गीता प्रचारक, कीर्तन अथवा रात्रि जागरण के, देवी जागरण के प्रचारक न बनों क्योंकि उन प्रचारकों को गीता प्रवचन, सन्त प्रवचन सुनने समझने विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता है। तुम गुरु ज्ञान में विचार पूर्वक ही सब कुछ करो।

जो अन्धकार में पकड़ा जाता है वही प्रकाश में देखा जाता है इसी प्रकार जो अज्ञान में 'मै हूँ' 'यह मेरा है' यह तुम हो यह तुम्हारा है इस प्रकार मन से मान लिया है, यही पकड़ना हुआ अब इसे ज्ञान में देखना है।

अभी अज्ञान में तुम जो अपना नाम या अपनी जाति बताते हो यह दूसरों ने तुम्हें सुना दिया था वही तुमने मान लिया है। यदि तुम्हें कुछ बताया न जाता तब तुम तो होते परन्तु अपना नाम, जाति, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, हिन्दू आदि अथवा जैन, बौद्ध, ऊँच नीच आदि कुछ भी बताकार अपना परिचय नहीं दे सकते थे।

पालतू पशु जब बार बार अपने पालक मनुष्य की ओर से जो नाम सुनते हैं तब वह भी मान लेते हैं कि मुझे पुकारा जा रहा है। एक गौशाला में मैंने देखा कि पचासों गायों के झुण्ड में जो नाम लिया जाता था उसी नाम की गाय निकल कर उसके पास आ जाती थी।

मन द्वारा पकड़ने के साधन पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इसीलिए जिस इन्द्रिय से जो विषय बार-बार मन पकड़ता है उसका इतना प्रगाढ़ अभ्यास हो जाता है, जो कि हानिप्रद होने पर भी आसानी से नहीं छूटता। अज्ञान में जो लोग अनावश्यक बीड़ी सिगरेट, शराब, पान, तम्बाकू, सुंघनी की आदत पकड़ लेते हैं, वह छोड़ नहीं पाते।

ज्ञान में सद्गुरु उपासना

एवं गुरोपासन यैकभक्त्या विद्या कुठारेण शितेन धीरः।
विबृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः सम्पद्य चात्मानमथत्यजास्त्रम्।।

गुरोपासना रूप अनन्य भक्ति द्वारा ज्ञान रूपी कुठार को तीक्ष्ण कर लो, उसी के द्वारा धैर्य एवं सावधानी से जीवभाव को काट डालो फिर परमात्म स्वरूप होकर उस वृत्ति रूप अस्त्रों को भी छोड़ दो।

गुरु के समीप स्थित रहने में गुरु की उपासना पूर्ण होती है।

गुरुदेव अखण्ड ज्ञान स्वरूप हैं अतः शिष्य अपनी बुद्धि द्वारा आहंकार को समर्पित रखते हुए गुरुदेव के ज्ञान स्परूप की उपासना पूर्ण करता है।

गुरुदेव देह नहीं है परन्तु स्थूल देहमय भी हैं अतः शिष्य अपने तन को देह मय गुरु की सेवा करते हुए देह द्वारा उपासक होता है।

जब तक देहाध्यास नहीं मिटता है तब तक गुरुदेव की दोहोपासना सद्गति में सहायक होती है।

परमभक्त भगवदानुरागी तुलसीदासजी ने मानस के आरम्भ में ही गुरु वन्दना में अदभुद ज्ञान-विज्ञान के योग द्वारा उपासना की पूर्णता का द्वार खोल दिया है।

श्रद्धावान गुरुभक्त निष्काम भाव से यदि गुरु के पद नखों को ध्यान से देखेगा, कोई अन्य विचार न उठाकर केवल ध्यान से देखने मात्र से हृदय में दिव्य दृष्टि खुल जायेगी जो गुरु के दिव्यतर, दिव्यतम स्वरूप के दर्शन में सहायक बनेगी। तभी गुरु की उपासना हो सकेगी।

श्रद्धालु शिष्य को सावधानी से समझ लेना चाहिए कि गुरुदेव की उपासना में आरम्भ में देव मन्दिर ही दीखेगा इसलिये मन्दिर में ही न अटक जाना चाहिये।

उपासना के आरम्भ में गुरु के बाह्यरूप को ध्यान से देखने पर अनेक वृत्तियुक्त एकाग्रता सधती है। प्रीति में मूर्ति आ जाना ध्यान में सहायक होता है।

क्रमशः गुरु के एक अंग अथवा पद नख ज्योति को ध्यान से देखते देखते एक वृत्ति रह जाती है तत्पश्चात गुरु के ज्ञान स्परूप की उपासना से वृत्ति की निवृत्ति हो जाती है।

एक गुरोपासक भक्त ने वैज्ञानिक ढंग से ध्यान साधन का क्रम समझाया कि गुरु के पद में शिष्य स्वतन्त्रतापूर्वक अधिकार प्राप्त कर सकता है लेकिन तभी जबकि अपनी मस्तक को गुरु के चरणों में समर्पित कर दे, अपने मस्तिष्क में फिर

जगत प्रपञ्च के विचार न आने दे।

साष्टांग प्रणाम का अर्थ यही है कि चरणों में सिर समर्पित करो जिससे मस्तिष्क में अर्थात् बुद्धि में गुरुदेव ज्ञान प्रकाशित हो सके।

गुरुपद नख की चमक को मन की दृष्टि से ध्यानपूर्वक देखने से अन्य विचारों को शान्त रखने से अन्तर दृष्टि खुलती है, उसी को ज्ञान दृष्टि कहते हैं।

जब तक मूर्ति पूजा, फूल माला, धूप दीप की अपेक्षा रहती है तब तक मन के विचार शान्त नहीं होते और ध्यान योग का आरम्भ नहीं होता।

ध्यान में क्रिया शान्त हो जाती है केवल देखना मात्र शेष रह जाता है-विचार नहीं चलता तब शक्ति का बिखराव समेट कर हृदय में केन्द्रित होकर प्रकाशपुंज बनकर अन्तःदर्शन में सहायक हो जाता है।

ध्यान के लिये केन्द्र यदि लम्बा चौड़ा होगा तब शक्ति केन्द्रित होने में अड़चन होगी इसीलिये ध्यान के लिए कोई दर्पण में बिन्दु रखकर दृष्टि स्थिर करते हैं। कोई दीपक की ज्योति को देखते हैं।

कोई गुरु-पद-नख ज्योति में भावना को समेटते हैं क्योंकि नख बहुत छोटा केन्द्र है, गुरुदेव के मुखाकृति को ध्यान में देखने से उतनी शीघ्रता से शक्ति केन्द्रित नहीं होगी जितनी शीघ्रता से नख ज्योति में होती है।

कोई साधक बाहर ध्याान न देकर अन्तर में त्रिकुटी के मध्य को ध्यान से देखते हैं।

कोई अनाहद ध्वानि में ध्यान लगाते हैं कोई-कोई गुरुजन नाभि के स्पन्दन को ध्यान से देखने की सम्मति देते हैं।

आरम्भ में पन्द्रह मिनट शान्त मौन बैठकर या खड़े रहकर ही ध्यान से देखो क्रमशः समय बढ़ाकर एक घण्टा ध्यान में बैठने से कुछ महीने में विचार शान्त होते-होते अद्भुत शान्ति की भूमिका मिलने लगती है अपने-आप ही वह होने लगता है जिसे अपने प्रयत्न से साधक नहीं पा सकता।

किसी-किसी साधक को श्वास-प्रश्वास की गति के साथ सोहं हन्सा का चिन्तन ही अनुभूति की भूमिका में पहुँचा देता है। जप, कीर्तन पाठ, पूजा करने वाले तो बाहर ही बाहर अहंकार को सन्तुष्ट करते रहते हैं। ध्यान से अन्तर यात्रा होती है।

कोई साधक जब इतने भाव से करते हैं कि मन तल्लीन हो जाता है, प्राण स्थिर हो जाते हैं, ऐसे जप को साक्षी होकर जब देखा जाता है तब आनन्द का भान होता है।

परमानन्द को जो भीतर खोजता है वह विज्ञानमय कोष के पार पा जाता है।

जो बाहर खोजता है वह अन्नमय कोष के बाहर क्षणभंगुर सुख में अटक जाता है।

एक सन्त ने कहा है कि हम परमात्मा प्रभु की याद कब करें जब कि वे भूलते ही नहीं हैं। ऐसी स्थिति तभी होती है जब समग्र प्रीति प्रभुमय हो जाती है।

गुरु प्रदत्त मन्त्र का जप यदि कामना पूर्ति के लिए किया जाता है तब ध्यान स्थिर नहीं होता इसीलिए तुम्हारी श्रद्धा सद्गुरु के ज्ञान स्वरूप में है तब तो तुम केवल भगवान की स्मृति निरन्तर बनी रहने के लिए ही जप करो। कीर्तन करो तो वह भी एकान्त में भगवत प्रेम के लिए करो। किसी श्रोता को रिझाने के लिए अथवा सभा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए जप, कीर्तन करोगे तब प्रभु से विमुख ही रहोगे।

जब तुम्हारी दृष्टि बिना दृश्य के ही स्थिर हो जाए, प्राण बिना रोके ही स्थिर हो जाये, चित्त बिना अवलम्ब के ही शान्त हो जाये तब समझना कि गुरु उपासना सिद्ध हो गई और गुरु कृपा से तुम्हें स्वयं ही गुरुत्व सुलभ हो गया।

गुरु उपासना से ही गुरु पद पाप्त होता है। इसी को गुरु पद पंकज सेवा कहते हैं।

अन्नमय कोष एवं प्राणमय कोष की शक्ति को लेकर मनोमय अहंकार उपासना करता है, ध्यान करता है, विज्ञान मय अहंकार उपासना में होता है, ध्यान में होता है। मनोमय पुरुष की उपसना एवं ध्यान में क्रिया कर्म की प्रधानता है।

विज्ञानमय पुरुष की उपासना एवं ध्यान में केवल देखने की दर्शन की प्रधानता है।

मनोमय पुरुष को उपासना एवं ध्यान के लिए किसी न किसी आश्रय की अपेक्षा रहती हैं

विज्ञानमय पुरुष को किसी की अपेक्षा नहीं रहती है।

मनोमय पुरुष को उपास्य देव का दर्शन होता है विज्ञान पुरुष को उपास्य देव की अभिन्नता का बोध होता है।

हमें यह भी बताया गया है कि जब मन नहीं रहता तब परमात्मा का बोध होता है। मन के रहते ध्यान की पूर्णता नहीं होती। मन है तब संसार है। मन नहीं है तब ध्यान है।

अविचलित चेतना का बोध, ध्यान की पूर्णता है विचलित चेतना ही तो मन है।

गुरु वशिष्ठ जी ने कहा है निश्चल चिति आत्मा है और चञ्चल चिति ही मन है।

सद्गुरु उपासना की महिमा पढ़कर या सुनकर अनेक शिष्य गुरुभक्त अपने

को सौभाग्यशाली समझेंगे उन्हें सावधान होकर अपना निरीक्षण करना चाहिए कि वास्तव में भीतर गुरु की उपसना चल रही है या मन की वासना चल रही है।

यह अहंकार जो कुछ भी अपने भीतर पा जाता है उसी से अकड़ने लगता है। तब तक जो कुछ भीतर नहीं आता तब तक तेरा दीखता है, जब से भीतर आया वही मेरा हो जाता है।

बाल्यकाल में ही मैंने रामायण, गीता तथा अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया तब अहंकार मानता था कि जितना मैं जानता हूँ उतना मेरे आस-पास कोई नहीं जानता।

जब सद्‌गुरु की शरण में शिष्य बना तब अन्य शिष्यों की अपेक्षा अधिक सेवा में तत्पर अपने को सर्वोपरि श्रेष्ठ समझता था।

कितनी आयु बीत जाने पर पता चला कि अहंकार कितना अभिमानी था। यह भी ज्ञान हो रहा है कि उस समय गुरु का उपासक नहीं था, अपने मन का ही भक्त था मन ही गुरु था जो मन चुन लेता था वही करता था। मन मुख था परन्तु गुरुमुख नहीं था।

धन के त्याग को त्याग मानकर धन लेने से संग्रह से बचता था। वस्त्र त्यागी बनने के लिए टाट पहिनता था।

सर्दी सहने को तपस्या मान कर टाट ओढ़ कर ठण्ड सहता था। व्रत में अन्न छोड़कर स्वल्प फलाहार ले लेता था और अपने को आदर्श तपस्वी मानता था।

एक बार पाँच धूनी नित्य तपना आरम्भ किया। पञ्चाग्नि तापने वाले शरबत पीकर तापते हैं जिससे गर्मी न बढ़े। एक महात्मा ने समझाया परन्तु उसकी बात काट दी कि जब शरबत पीकर तपना है तब तप कैसा?

एक दिन ऐसी गर्मी बढ़ी कि बाहर निकलते ही मूर्छा आ गयी पुनः भोजन लेते समय आधार चक्र से शक्ति उठी, तीव्रता से ऊपर चढ़ती गयी। बाल्यावस्था थी, अदृश्य कृपा संरक्षक थी। कई घण्टे उन्मत्तावस्था रही, आलाप, प्रलाप, विलाप चलता रहा, देखने वाले परेशान हो गये फिर स्वस्थ हो गया।

अब समझ में आया कि यह सब गुरु आदेश निर्देश से न होकर मन के निर्णय से ही करता था। मन ही गुरु था, अहंकार शिष्य था लेकिन अहंकार अपने को सद्‌गुरु का शिष्य मानता था।

भगवान ने कहा है कि जब मन शिष्य हो जाता है तब मैं ही आत्मा रूप में हो जाता हूँ।

यह भगवद् वाक्य पढ़कर मुझे ज्ञात हुआ कि आज हजारों शिष्य ऐसे बने हुए हैं जिन्हें यह ज्ञान ही नहीं है कि उनका मन ही गुरु है। सद्‌गुरु से तो यह सभी

शिष्य विमुख है।

मैं भी अनेक शिष्यों का अपने को गुरु मानता था क्योंकि अनेक शिष्य मुझे गुरु मानते हैं। अब ज्ञात हुआ कि सबका गुरु मन ही है। मेरे भीतर अहंकार ही गुरु बन रहा है, यह धोखा ही है।

मेरे पास अब भी अनेक लोग आते हैं और कहते हैं कि आपको हम गुरु बनायेंगे हमें मन्त्र दे दो। मुझे कहना पड़ता है कि बताओ, कैसे बैठें कैसे मन्त्र सुनायें क्योंकि बहुत लोग कान में मन्त्र सुनाने को ही दीक्षा मानते हैं।

सद्‌शिक्षा नाम की पुस्तक में मैंने लिखा है कि आरम्भ में गुरु कृपा का अधिकारी होने के लिये शिक्षा के साथ दीक्षा लेने की तैयारी कैसे की जाती है?

मन में वासना ही गुरोपासना में बाधक रहा करती है। बुद्धि की जड़ता तथा मूर्खता, मूढ़ता के कारण यथार्थ बात, हर व्यक्ति समझाने पर भी नहीं समझ पाता। ऐसे लोगों से कुछ शुभ कर्म बने आभ भगवद् नाम जप अथवा कीर्तन से कुछ भावना पवित्र हो इसलिये सन्त महात्मा कुछ करते रहने को बता देते हैं।

मनुष्य का मन अहंकार करने के लिये बहुत राजी रहता है और लाखों नर-नारी जीवन भर जप, कीर्तन पाठ, पूजा करते रहते हैं। परन्तु सन्त संगति न मिलने के कराण अपनी भूल को, भ्रम को, अज्ञान को समझ नहीं पाते। अहंकार अपनी कृतियों से (क्रियाओं से) सन्तुष्ट रहता है। प्रत्येक कर्म के प्रेरक प्रायः कोई कामना, वासना ही रहा करती है।

गुरु समीप रहकर जब अहंकार को अपने अज्ञान का ज्ञान होता है तब सर्वप्रथम कर्ता भाव समाप्त होता है।

कर्ता भाव का अर्पण करना ही अहंकार का प्रथम समर्पण है। यह कर्ताभाव, अहंकार का अपना ही बनाया हुआ है।

यह अहंकार जब किसी दोष को छोड़ता है तब गुण का अभिमान हो जाता है, बुराई छोड़ता है तब भलाई का अभिमान बढ़ जाता है लेकिन जब प्रभु के समर्पित होता है तब अहंगत ज्ञान का, गुण का अभिमान, भलाई करने का अभिमान प्रभु छुड़ा देते हैं।

बुरे आदमी की बुराई प्रगट होती रहती है लेकिन भले आदमी को अर्थात् बने हुए धर्मात्मा भक्त की बुराई भीतर रहा करती है, वह आसानी से प्रगट नहीं होती इसलिये भीतर छिपी हुई बुराई का दूर होना प्रभु कृपा से ही सम्भव है।

उपासना में जब तक वासना समाप्त नहीं होती तब तक प्रेम में वासना की गन्ध आती रहती है और जब तक तर्क-वितर्क विचार समाप्त नहीं होते तब तक बुद्धि अशुद्ध बनी रहती है।

गुरु की समीपता में ही मन एवं बुद्धि की शुद्धि सुगम हो जाती है।

उपासक जब वासना से मुक्त होता है तब शान्त स्वस्थ होता है। शान्त स्वस्थ होने पर भक्त होता है तभी उसमें आनन्द प्रस्फुटित, उल्लसित होता है।

सद्गुरु की उपासना से अर्थात् मन को तथा बुद्धि को और अहंकार को गुरु ज्ञान में उपस्थित रखते हुए साधक की ऐसी दृष्टि खुलती है कि प्रत्येक दृश्य के पीछे एक अस्तित्व का दर्शन करता है। प्रत्येक सौंदर्य के पीछे सौन्दर्य निधान परमात्मा सत्य का अनुभव करता है।

वही साधक जब सिद्ध हो जाता है तब वह बाहर से नहीं अपितु भीतर से ही सब कुछ के प्रकाशक का अनुभव करता है।

एक प्रेमी बाहर खिले हुए पुष्पों को तथा हरे-भरे फलों से शोभित वृक्षों को एवं पक्षियों की वाणी को सुनकर भीतर बैठे रहने वाले प्रेमी को पुकारता है कि तू भीतर क्या कर रहा है बाहर निकल कर प्रभु के अनुपम सौन्दर्य को देख ले, कितना आनन्द है।

भीतर देखने वाला प्रेमी पुकारता है कि तू बाहर कहाँ उलझा है भीतर आकर सब कुछ के रचयिता को देख ले, सबके प्रकाश को देख ले, बाहर का सौन्दर्य कुछ क्षणों में छिप जायेगा परन्तु भीतर जो सबका दृष्टा है, प्रकाशक है वह तो नित्य-निरन्तर विद्यमान रहेगा।

बाहर देखने के लिये शुद्ध बुद्धि एवं एकाग्र मन की अपेक्षा है किन्तु भीतर दर्शन के लिये किसी साधन की अपेक्षा नहीं है। स्वयं असंग होने की आवश्यकता है।

गुरुदेव की पूजा, सेवा, स्तुति, प्रार्थना करते हुए यदि तुम्हारे मन को अच्छा लगता है मन बहुत हर्षित उल्लासित होता है तो तुम्हारा मन ही उस सब कुछ का भोगी है। तुम्हारा अहंकार ही अपनी कृतियों से सन्तुष्ट हो रहा है, यह गुरु पूजन नहीं होगा यह तो अहंकार बीच में ही सब कुछ ले लेगा।

यदि तुम गुरोपासना से ज्ञान दृष्टि प्राप्त करना चाहते हो तो मन की वासना की पूर्ति न करो।

वासना की पूर्ति में जो प्रयत्न करोगे उसमें शक्ति नष्ट होगी, समय व्यर्थ होगा फिर भी वासना की पूर्ति तो हो ही नहीं सकती।

यदि तुम वासना की पूर्ति का प्रयत्न न करोगे तब प्राकृतिक विधान से स्वतः अनायास ही वासना पूर्ति के अवसर सामने आयेंगे उस समय तुम गुरु विवेक का ही आश्रय लेकर वासना से अपने को निवृत्त कर सकोगे।

गुरु विवेक से वासना की निवृत्ति होती है तभी गुरु ज्ञान द्वारा जब वासना पात्र निर्वासित हो जाता है और अनायास ही निरीहता आ जाती है पुनः इच्छा नहीं

उठती, फिर संकल्प नही उठते। वासना निर्वासित हुए बिना साधक निरीह इच्छा रहित और संकल्प रहित नही हो पाता।

आस्था, श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक आत्मीयता का सम्बन्ध उपासना को पूर्ण बनाता है। नाम रूप के पीछे आत्मा परमात्मा से स्वयं को अभिन्न अनुभव करना नित्य उपासना है। अभ्यास दृढ़ करो।

महा मोह तमः स्तोम नाशिने ज्ञान भानवे।
नमः श्री गुरवे तुभ्यं साक्षिणे मुक्ति हेतवें।।
नमः शांताय दान्ताय सच्चिदानन्द रूपिणे।
नारायणाय शुद्धाय विश्व कल्याण कारिणे।।

श्रद्धा से गुरुदेव को मानने वाले, माला फूल आदि से पूजन करने वाले, द्रव्य द्वारा दक्षिणा देकर अपने अहंकार को सन्तुष्ट करने वाले हजारों शिष्य मिलते हैं परन्तु गुरुदेव के ज्ञान स्वरूप को जानने वाले और अपने हृदय को कमलवत असंग अलिप्त नित्य प्रफुल्लित एवं कोमल स्निग्ध रखते हुए हृदय कमल में ज्ञान स्वरूप गुरुदेव को विश्राम देने वाले कोई विरले विवेकी प्रेम भरे शिष्य होते हैं। वही सद्गुरु की उपासना में तत्पर रहते हैं।

अपने ज्ञान की चर्चा सुनने वाले, पढ़ने वाले जो भी कोई हो उन्हीं से निवेदन है कि यदि पुण्य प्रताप से श्रद्धा जागृत होने पर तुम किसी नाम रूप में गुरुदेव की प्रतिष्ठा कर चुके हो तो अपने लोभी, मोही, कामी मन को गुरु ज्ञान में देखते रहने के लिये सावधान रहो- यह तभी हो सकेगा जब मन की न मानकर गुरु से सुनोगे और जो कुछ करोगे वह गुरु आज्ञानुसार ही करोगे।

हे जीवनेश तुमको आसान नहीं पाना।
आसान भी इतने हो बस पर्दा ही हटाना।।
यह परदा भी जो कुछ है बस अपना ही बनाया है।
अपने ही मन से मैंने जब दूर तुम्हें माना।।
मुझे कौन जानता था तुम्हें मानने के पहले।
तुम्हें अपना माना जबसे अब जानता जमाना।
सब रूप बदलते है यह मन भी बदलता है।
पर तुम नही बदलते आना न कहीं जाना।।
सब खोज ही गलत है इक जानना काफी है।
जिसने भी जाना तुमको अपने में ही पहचाना।।
यह पथिक चलते-चलते इस दर पे आ गया है।
यह द्वार आखिरी है, है आखिरी ठिकाना।।

गुरु वाक्य

जब तक तुम पदार्थों का संग्रह करते हो, तब तक लोभ से छूटे हुए नहीं हो, जब तक लोभ है, तब तक तृष्णा से मुक्त नहीं जब तक तृष्णा है, तब तक मोह से मुक्त नहीं; जब तक मोह है तब तक तुम दुखों से मुक्त नहीं हो।

तुम्हारे साथ जितनी सत्ता है उतना ही तुम पर उत्तरदायित्व का भार है। यदि तुम उस सत्ता का उपयोग जनहित में नहीं करके अपने सुख के लिए करते हो, तो तुम मानव समाज के प्रति विश्वासघात करते हो। सत्ताधीश के लिए पाप और पुण्य दोनों सुगम है। जितना ही तुम संयमी और सत्यावलम्बी होकर रहोगे उतीन ही अपनी शक्ति का परहित में सुदपयोग कर सकोगे।

ज्ञान में वासना से मुक्ति में ही उपासना की पूर्णता

उपासना की पूर्णता में वासना से मुक्ति मिल जाती है। अहंकार जब तक मन के साथ चलता है तब तक वासना के अनुसार ही कामना उत्पन्न होती रहती है उन्हीं की पूर्ति में सुख मानता है।

सुखोपभोग के परिणाम अनेक बार दुख भोगकर जब दुख से मुक्त होना चाहता है तब उपासना द्वारा ही दुख का अन्त होने की सम्भावना सुनकर उपासक होना चाहता है।

उपासना में वासना से सनी हुई बुद्धि को शुद्ध करना अनिवार्य होता है। लेकिन वासना ही अहंकार के विस्तार का आधार है।

जो इन्द्रिय मन के द्वारा शब्दस्पर्श रसादि का सुख भोगा जाता है वह छूट जाने पर भी अहंकार को उन भोगों की जो बास-गन्ध आती है इसी को वासना कहते है।

साधना के आरम्भ में वासना के पात्र को शुद्ध करके उपासना योग्य बनाना होता है। एक समय ऐसा भी आता है जिसमें वासना पात्र को ही छोड़ देना होता है।

उपासना उसी को समझना जब अपने उपास्य देव से दूरी न रह जाये, निरन्तर समीपता अनुभूत होती रहे, चारों ओर प्रभु की विद्यमानता स्मरण में भरी रहे।

यदि बीच में वासना आयेगी, कामना उत्पन्न हो जायेगी तभी प्रभु की विस्मृति हो जायेगी।

निष्कामता ही उपासना की पूर्णता में सहायक है।

कीर्तन, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ स्नान, दान करने से काम, क्रोध लोभ मिट जाते हैं तब समझ में आ जाता है कि मुक्ति मिली। परन्तु दोष मिटते नहीं, करने का अभिमान बना रहता है।

एक गुरु भक्त अपने गुरु से एक महात्मा के चमत्कारों का वर्णन करने लगे कि बड़े सिद्ध महात्मा है, रोग दूर कर देते हैं, आभूषण, घड़ी आदि वस्तुएं हाथ में आ जाती हैं, हजारों नर-नारी दर्शन करने जाते हैं इत्यादि चमत्कार सुनकर गुरु ने पूछा कि तुमने दर्शन किए, प्रभावित हुए तब यह बताओ- तुम्हारे मन में काम, क्रोध लोभादि जो भी विकार है वह उस सिद्ध पुरुष ने कोई विकार मिटाने का चमत्कार दिखाया? भक्त ने बताया कि मैंने प्रार्थना की मैं कामी अधिक हूँ मेरी कामना वासना मिटा दो परन्तु सिद्ध महात्मा ने इसे मिटाने का चमत्कार नहीं दिखाया, विवशता बताई।

इस प्रकार पढ़ने सुनने से मन में आता है कि तब यह सब कुछ करना व्यर्थ

ही है। अब यदि व्यर्थ समझकर यह सब छोड़ दिये जायें तब भी तो कुछ करना तो रहेगा ही। पढ़ना सुनना, कहीं यात्रा करना, आदि कुछ न कुछ तो होता ही रहेगा।

ध्यान से देखने पर यही दीखता है कि साधना सम्बन्धी जप, कीर्तन, तीर्थ यात्रा, पूजा, पाठ भले ही कोई न करे लेकिन संसार प्रपञ्च में तो सब कुछ होता ही रहेगा।

कुछ तो सुनेगा ही, कुछ बोलेगा ही, कहीं चलेगा ही उसका प्रभाव पड़ेगा ही।

लाखों नर-नारी श्रद्धा विश्वास के साथ पूज्य भाव पूर्वक अपने अपने पूज्य देव की पूजा, आराधना, उपासना मानकर जो कुछ करते हैं यह भी वासना निवृत्ति में सहायक है। यह सभी शुभकर्म हैं।

विनाशी नाम रूपों में जो आसक्ति होती है वह अशुद्ध वासना के कारण होती है।

जब वासना शुद्ध होने लगती है तब अविनाशी भगवान के नाम रूप में आसक्ति हो जाती है।

विनाशी नाम रूप में आसक्ति भोगी बनाती है। अविनाशी के नाम रूप में आसक्ति, भोगासक्ति से छुड़ाकर योगी भक्त बना देती है। इसीलिये सन्त का निर्णय है :-

तुलसी ममता राम सो समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भये भव पार।।

परमात्मा आँखों से दीखता नहीं है क्योंकि देखने की दृष्टि ही नहीं खुली। वह ज्ञान दृष्टि गुरु की उपासना से खुलती है।

उधरहिं विमल विलोचन हिय के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।

भगवान का भी निर्णय है 'पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।' ज्ञान चक्षु से ही देखा जा सकता है।

जो कोई श्रद्धा विश्वासपूर्वक भगवान को मूर्ति में मानकर जो कुछ भी करता है उस कर्म के पीछे उनके मन में यही स्मरण रहता है कि यह भगवान के लिये है। प्रत्येक क्रिया में भगवान ही स्मरण में रहते हैं। फूल तोड़ते हुए, माला बनाते हुए, भोजन बनाते हुए उसे भगवान की याद आती रहेगी। अपने माने हुए भगवान के स्मरण से ही भोगी मन भगवान से सम्बन्धित होता है।

किसी मन्दिर में या अपने पूजा गृह में बैठे हुए साधक जितने समय तक मौन रहता है उतने समय तक वाणी से होने वाले पापों से बचा रहता है।

किसी के संग से जब असंगत वचन बोलता है, झूठ, असत चर्चा करता है, कठोर वाक्य कह देता है, किसी की निन्दा करता है तब अनर्थकारी पाप बन जाता है।

पूजा-पाठ, जप करने वाले जब तक वार्ता नहीं करते हैं तब तक पाप से बचे रहते हैं।

श्रद्धालु जन पूजा पाठ, जप, कीर्तन करते हुए यदि अभक्ष्य भोजन नहीं करते किसी को तन से, वाणी से कष्ट नहीं पहुँचाते, अनावश्यक व्यसनों में, भोगों में जो शक्ति नष्ट नहीं करते, जो व्यभिचार, दुराचार से बचे रहते हैं और पराये धन की चोरी नहीं करते वह 'तन के पापों से बचे रहते हैं।

जप, तप, व्रत, पूजा, पाठ, तीर्थ सेवन करने वाले जनों की यदि सन्त सद्गुरु के प्रति श्रद्धा हो जाती है और बुद्धि अच्छी होती है जब गुरु वाक्यों के प्रभाव से यदि लोभ, मोह, ममता, देहाभिमान ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोधादि विकारों को स्थान नहीं देते तब वह मन के द्वारा होने वाले पापों से भी बचते रहते हैं।

विद्याभिमान, बुद्धिमान बाबू लोग अपने घरों में जब माताओं को ठाकुर जी के मन्दिर में जप, पाठ, आरती, प्रार्थना, कीर्तन करते देखते हैं तब मोह, ममता, प्रीति के कारण मना तो नहीं करते और श्रद्धा, विश्वास रखने वाली मातायें मना करने पर मान भी नहीं सकतीं लेकिन विद्वान बाबू लोग, ऐसी माताओं को बुद्धिहीन, नासमझ, अन्धविश्वासी मानते हुए कभी-कभी उपहास अवश्य करते हैं। विद्याभिमानी, धनाभिमानी, पदाभिमानी अश्रद्धालू बाबू साहब को पूजा, पाठ, मन्दिर में बैठे रहना बेकार मालूम देता है, लेकिन कोई क्लब जा रहा है, कोई ताश खेल रहा है, कोई पर चर्चा में समय नष्ट कर रहा है इसी प्रकार जब वह प्रभु चिन्तन, आत्म चिन्तन में विपरीत देह चिन्तन, गेह चिन्तन, धन चिन्तन अथवा विनाशी पदार्थों के चिन्तन में तल्लीन है तब वह नहीं सोच पाता कि इसमें सारा जीवन ही व्यर्थ नष्ट हो रहा है। वह सत् कथा श्रवण को व्यर्थ मानता है, अखबारों में अध्ययन को सार्थक समझता है, उपन्यास, झूठी कहानी पढ़ने में घण्टों बिता देता है परन्तु अन्त में क्या परिणाम होगा और वर्तमान में क्या प्रभाव पड़ रहा है, इसे समझ ही नहीं पाता और पूर्ण दुख आने के पहिले ऐसे मोही, लोभी अभिमानी व्यक्ति को कोई सन्त महात्मा समझा नहीं सकता।

जब तक बुद्धि सूक्ष्म नहीं होती तब तक शुभ कर्म करते रहना अर्थात् पूजा, पाठ, जप, कीर्तन, करते रहना पाप से बचते रहने के लिये सरल उपाय है।

शुभ कर्म के साथ-साथ अपने अधिकार में रहने वाली शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा दूसरों को दुख न पहुँचाकर किसी का कष्ट दूर करते हुए उदारता, नम्रता, सरलता, सहिष्णुता, निष्कामता बढ़ाते रहना बहुत सहज पुण्य है।

परमगुरु भगवान ने कहा है कि जो साधक पुण्य कर्मों के द्वारा पापों को नष्ट कर देता है, आने ही नहीं देता वही प्रारब्ध वश होने वाले लोभ और हानि एवं संयोग और वियोग, सम्मान और अपमान, सर्दी गर्मी, अनुकूलता प्रतिकूलता के प्रभाव से मुक्त रहकर दृढ़तापूर्वक भजन में तत्पर रहता है। भजन उसे कहते है जिसका आरम्भ तो होता है परन्तु अन्त नहीं होता, जो सतत निरन्तर चलता ही रहता है।

जो लोग पूजा, पाठ, जप, कीर्तन, को ही हरिभजन मानते हैं वह भ्रम में हैं उन्हें सन्त संग द्वारा विवेक प्राप्त नहीं हो सका।

परमात्मा ने मनुष्य को कितना अद्‌भुत बनाया है - यह मनुष्य सोचता ही नहीं है। इसके विपरीत मनुष्य का अहंकार बड़े गर्व के साथ सबको यह दिखाना चाहता है कि देखो दर्शन करो हमने भगवान और भगवान के मन्दिर को कितना सुन्दर बनाया है।

अहंकार के बनाए हुए मन्दिरों में कुछ ऐसी नवीनता है कि एक से ही अनेक भगवान भगवती की रूप दर्शित होते है। ऐसे ढंग से शीशा लगाये जाते हैं कि जिसमें दर्शन करने वाला उसी क्षण सम्मोहित हो जाता है यदि सच्चे भगवान भी पीठ में हाथ रख कर कहें कि वहाँ नहीं मै यहाँ हूँ तब दर्शन करने वाला प्रेमी विश्वास नहीं करेगा। वह एक से अनेक ही देखेगा। अनेक में एक नही देखेगा।

हम लोग भगवान को भी चुनौती दे रहे हैं कि तुम कहते हो कि वैरी काम को मारो लेकिन हम ऐसे भक्त हैं कि आपकी मूर्ति के द्वारा अपने काम की पूर्ति करते रहेंगे। क्योंकि तुम स्वयं कामारि हो, काम को नाश करने वाले हो, तब हमें तुम्हारी जरूरत नहीं है तुम्हारी मूर्ति से हमारे कामों की पूर्ति हो जायेगी। धन मिलता रहेगा। कामनाओं की पूर्ति धन से होती रहेगी। किसी प्रकार मनुष्य भगवान से सम्बन्ध जोड़ ले यह बहुत ही शुभ और सुन्दर है।

लेकिन काम ऐसा दुर्जय है, ऐसा शक्तिशाली है कि यह साधक के जप के पीछे, तप की पीछे, त्याग की पीछे, सन्यास के पीछे, शास्त्र ज्ञान के पीछे, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, के पीछे से सभी पर अधिकार जमा लेता है।

पढ़ने सुनने वाले यह अर्थ लगाने की भूल न करें कि मन्दिर बनाना व्यर्थ है, मन्दिरों में दर्शन करना मूढ़ता है। वैसे तो मन्दिर में दर्शन करना कितना सार्थक है यह तो मन्दिर बनवाने वाले मन्दिर के मालिकों के द्वारा ही सिद्ध हो जाता है। जब कि वे कभी-कभी विशेष तिथि, उत्सव के दिन वर्ष भर में एक दो बार अन्य लोगों को दिखाने के लिये भले ही दर्शकों के साथ सम्मिलित हो जायें। क्योंकि जिस अर्थ को लेकर मन्दिर बनवाते हैं वह अर्थ तो अन्य दर्शकों से प्राप्त हो ही जाता है।

एक बड़ी नगरी के प्रसिद्ध मन्दिर में मुझे सत्चर्चा के लिये आमन्त्रित किया, मुझे तो आसन में बिठा दिया और मन्दिर कमेटी के लोग बगल के बरामदे में चढ़े

हुए पैसे ही गिनते रहे। मैंने उनसे पूछा कि मन्दिर पैसा प्राप्त करने के लिए ही बना है या धर्म ज्ञान प्रसार के लिए है। इसे हम धर्म मन्दिर कहें कि अर्थ मन्दिर कहें? बाद में एक मण्डलेश्वर महाराज ने मेरी बात का विरोध किया और कहा कि इन मन्दिरों की बदौलत ही सनातम धर्म चल रहा है। मुझे आश्चर्य हुआ कि मन्दिरों की बदौलत सनातन धर्म चल रहा है या सनातन धर्म के नाम से यह मन्दिर चल रहे हैं और मन्दिरों की बदौलत रोजी-रोटी मिल रही है। धर्म और भगवान की प्यास तो मन्दिरों में आने वालों के भीतर दिखाई नहीं देती। अवश्य ही धन की प्यास, मान और नाम की प्यास साथ ही मनोकामना पूर्ति की प्यास सभी में दीखती है। मन्दिर से सम्बन्ध रखने वाले भक्त, भगवान को तो चाहते नहीं, बल्कि भगवान से संसार का सब कुछ चाहते हैं।

जो ज्ञान में नहीं देख पाते उन्हे मनमानी पूजा आरती करते देखकर तुम अपनी पूजा विधि से ही सन्तुष्ट रहो। किसी की नकल न करो।

गुरु ग्रन्थ साहब में आरती देखो- (गगन है थाल रविचन्द दीपक बने) सन्त तो प्रकृति द्वारा आरती होते हुए देख रहे हैं। प्रकृति द्वारा आराधना भी नित्य हो रही है। भीतर अनाहत ध्वनि हो रही है।

ज्ञानी, फूल-माला मूर्ति में नहीं चढ़ाता वह तो देखता है पत्र पुष्प पहले ही परमात्मा में चढ़े हुए हैं उसी में कलियाँ खिल रही हैं, फूल बन रहे हैं, सब स्वतः ही अर्पित हो रहा है, बल्कि तुम उस प्राकृतिक पूजा में बाधा न डालो।

कलियों को न तोड़ो, फूलों को न तोड़ो, अभी चढ़े रहने दो अपने आप गिर-गिर कर समर्पित होने दो। जो कुछ सुन्दर पदार्थ देखो सब परमात्मा में ही देखों। समस्त प्रकृति पूजा कर रही है। तुम्हें करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पास है ही क्या? यह फूल पत्र जो तुम तोड़ कर चढ़ाते हो यह तुम्हारे नहीं हैं फिर भी अहंकार अपनी मानकर अर्पित करते हुए उसके बदले में फल पाने की आशा करता है। हजारो नर-नारी यही करते है। बहुत बड़ी भीड़ें है इसलिये वही ठीक दीखते हैं। सन्त कबीर की, नानक की, दादू की, अस्ट्रावक्र की, दत्तात्रेय की, जनक की पूजा की विधि कोई विरला ही जानता है।

वासना से वेष्ठित अहंकार दरिद्र बना रहता है। उपासना से तृप्त अहंकार देवी सम्पदा से धनवान हो जाता है।

जब उपासक जान लेता है कि मेरा प्रभु इतना पूर्ण समर्थ है कि बिना मांगे ही इतना दिया था कि सम्हाल ही न पाये और दुरुपयोग करके दरिद्र बन गये थे। जब समझ में आया तब अब माँगने की आवश्यकता ही नहीं रह गयी है। हम एक मात्र प्रभु के ही हैं और प्रभु का जो कुछ है सब हमारे लिये ही है केवल हमें उस योग्यता को अर्जित करना है कि प्रभु की शक्ति सम्पदा को सम्हाल सकें।

प्रभु की उपासना अपने भीतर दैवी सम्पदा से भरे होने का अनुभव कराती है और वासना सदा भिखारी होने की याद दिलाती है। दीन बनाये रहती है, मांगने के लिये प्रेरित करती है।

मन्दिरों में अपने बनाये हुए भगवान के आगे भक्त लोग हाथ जोड़ कर कुछ न कुछ मांगते ही रहते हैं और जब मांगना बन्द होता है तब मिले हुए, बचे हुए की रक्षा में लिये प्रार्थना करते हैं।

मन्दिरों में कुछ पूजा भेंट प्रसाद ले जाते है उसके बदले में बहुत पाने की आशा से ही ले जाते हैं।

जो कुछ मिला है उसके लिये भगवान को धन्यवाद देने कोई बिरला ही जाता है।

भगवान को मानते हो तो मन्दिर में ध्यान के लिये, ज्ञान के लिए, तथा दान के लिये, सेवा के लिए जाओ।

मन्दिर में केवल भिखारी की तरह माँगने ही नहीं जाओ बल्कि अभी तक जो कुछ तुम्हें तन, धन, परिवार योग्यता तथा सुखभोग के साधन मिले हैं उसके लिये कृतज्ञता पूर्वक भगवान को धन्यवाद देने जाओ।

अज्ञान में भगवान को मानने वाले हजारों नर-नारी जब मन्दिर में जाते हैं तब कुछ न कुछ माँगने ही जाते है। ऐसे लोग भी उन लाखों से आगे हैं जो भगवान को मानते ही नहीं, जिनके हृदय में भगवान के दयालु, कृपालु, महादानी होने का विश्वास ही नहीं है उन अभिमानियों से तो यह मन्दिर में जाने वाले बहुत भले हैं, किसी न किसी समय जब बुद्धि सही काम करेगी और कोई ज्ञानी सन्त महात्मा में श्रद्धा होगी तब ऐसे अज्ञानियों को भी यथार्थ ज्ञान होगा। इसीलिए जो अज्ञानी हैं, नहीं जानते हैं उनसे तुम घृणा न करना, स्वयं ज्ञानी होने का अभिमान न करना और जब तक वह मूढ़ लोग तुम्हारी सही बात सुनना न चाहें तब तक समझाने की भी चेष्टा न करना। ऐसे लोगो से प्रीति पूर्वक बर्ताव करना उनकी आवश्यकता पूर्ण करना जिससे कि वे तुमसे प्रेम करें और तुम्हारी सुनें।

यदि तुम अध्ययन करते हुए, श्रद्धावान होने के कारण गुरु प्रवचनों को सुनते हुए अपना निरीक्षण करो कि कौन सी वासना ज्ञान ध्यान में उपासना में मन को चञ्चल बनाये रहती है।

कामी मन जब ध्यान जप आराधना उपासना करने बैठेगा तब स्त्री सम्बन्धित विचार अधिक चलते रहेंगे।

लोभी मन में धन सम्पत्ति सम्बन्धित विचारों की प्रधानता रहेगी। मोही मनप्रिय परिवार के सदस्यों के विषय में ही मनन करेगा।

साधना उपासना के समय उसी का अधिक स्मरण आयेगा जिससे कुछ पाना है या देना है।

विषयासक्ति, धनासक्ति, देहासक्ति, किसी भी प्रकार की सुखासक्ति को महापाश बताया है इन पाशों से छूटे बिना वेद शास्त्र के महापण्डित को भी मोक्ष नहीं मिलता। क्योंकि वासना ही उपासना को पूर्ण नहीं होने देती।

भगवान कहते हैं कि तुम अपने मित्र हो जाओ तब अपने ही प्रयत्न से मुक्त हो सकते हो। यदि तुम अपने शत्रु बने रहे तो कोई दूसरा तुम्हें मुक्त न कर पायेगा।

तुम धन, मान, भोग, सुख से तृप्ति शान्ति चाहते हो तब तो अपने शत्रु हो, तुम अपने अज्ञान से ही बन्धन तथा दुख बढ़ाते रहोगे।

तुम आत्म ज्ञान प्राप्त करते हुए परमात्मा आत्मा की अभिन्नता एकता का अनुभव करते हुए शान्त स्वस्थ हो रहे हो तब तुम्हीं अपने मित्र हो। तुम अपने ही अज्ञान से दुखी होते हो। अपने को दुखी रखना अपने प्रति शत्रुता है। किसी का सहारा न लेकर आत्मा की महिमा मनन करते हुए आनन्दित रहना अपने प्रति मित्रता है।

हमें समझाया गया कि परमात्मा चेतन सागर की भाँति है। सागर में जो नदी मिलती है वह सागर हो जाती है इसी प्रकार परमात्मा का उपासक परमात्मामय हो जाता है भिन्न नहीं रह जाता।

तुम्हारी चेतना की जितनी ही धारायें बनेंगी वह छोटी-छोटी नदी नाली बनकर मरुस्थल में विलीन होगी वह चेतना गंगा होकर चेतन सिन्धु से नहीं मिल सकेगी।

उपासना साधना में जो भी संकल्प करो उसे टूटने न दो। जितनी बार संकल्प टूटेगा उतने ही छिद्रों द्वारा शक्ति बिखरती रहेगी। भगवान ने संयमी को जागृत कहा है।

उपासना के लिए दृढ़ निश्चय होना ही चाहिए। जब तुम्हारी बुद्धि में दृढ़ निश्चय होगा कि यही आत्मा है, यही नित्य रहने वाला चेतन आत्मा है, अविनाशी आत्मा है, निर्विकार आत्मा है, यह आत्मा अभी है, यही है, तब निरन्तर स्मरण चलेगा। तब मन बुद्धि समर्पित होने में संशय नहीं होगा। तभी साधक मुक्त रहकर भक्त बनेगा।

'यतात्मा दृढ़ निश्चयः मय्यर्पित मनोबुद्धिर्योमद्भक्तः।'

जब तक मन बुद्धि समर्पित नहीं है तब तक उपासना नहीं होगी, वासना चलेगी।

योग वशिष्ठ में वासना तीन प्रकार की बताई गई हैं।

(१) लोक वासना अर्थात स्वर्गादि उत्तम लोकों की प्राप्ति हो।

(२) शास्त्र वासना अर्थात् सब शास्त्रों को पढ़कर सर्वोपरि ज्ञानी हो जाऊँ।

(३) शरीर वासना अर्थात् मेरा शरीर अति सुन्दर बलिष्ठ बना रहे।

वाल्मीकीय रामायण में सांसारिक भोगों की वासना को वासना कहा है और आत्म ज्ञान की तथा सद्गुणों के वृद्धि की, संयम, धारणा ध्यान एवं मुक्ति, भक्ति, शान्ति की अभिलाषा को शुद्ध वासना कहा है। मलिन वासना से बार-बार जन्म होता है और शुद्ध वासना से मोक्ष का द्वारा मिल जाता है।

जीवन मुक्ति के लिए तो समग्र वासनाओं का त्याग करना होता है।

वासना से मन रूपी पात्र में बास आती रहती है, गन्ध आती रहती है, वही भोंगो के लिये प्रेरित करती है इसलिये अन्त में वासना का पात्र मन को ही छोड़ना पड़ता है।

वासना की पूर्ति जिससे होती है उसी के प्रति मन रागी बन जाता और विरोध होने पर द्वेषी बन जाता है। राग, द्वेष से ही सारे प्राणी आनन्द से विमुख हो रहे है। वही ज्ञान, वही भक्ति, वही भजन, वही सन्तसंग सर्वोत्तम है जिससे राग, द्वेष मिट जायें।

गुरु ज्ञान में अहंकार जब अभिमान शून्य होता है तब उपासना आरम्भ होती है और जैसे-जैसे अहंकार पिघलता जाता है अन्त में अहंकार के गल जाने पर उपासना पूर्ण होती है।

हम अनेक साधक मन्दिर में भगवान की मूर्ति की अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार पूजा करने को ही भगवदोपासना मानते हैं। यह शुभ कर्म अवश्य है परन्तु शुभ कर्म के पीछे भाव क्या है, ज्ञान कितना है एवं प्रेम कितना समिट पाया है और कितना धन, मान, भोग में लगा हुआ है- यह विवेक होने पर उपासना और वासना का निर्णय हो पाता है।

प्रेम से भरे उपासक का शरीर कहीं भी रहे लेकिन मन से प्रतिपल अपने उपास्य देव का स्मरण चलता है और जो भी अनुकूल प्रतिकूल घटित होता है उस घटना के पीछे प्रभु की ही मर्जी दीखती है।

प्रभु के उपासक अहंकार को अपने समस्त आकार प्रभु से ही मिले हुए दीखते हैं। फिर आकारों का अभिमान नहीं रह जाता। किसी दूसरे के दिए हुए वस्त्र कोई भिखारी पहन ले ऐसे ही ऊपर से सब आकार ओढ़े रहता है और दाता के दान का स्मरण करते मस्त रहता है। चाहे कुछ भी आये या जाये, वह राग-द्वेष, विषमता से रहित होता है।

अहंकार जब शक्ति को अपनी मान कर भोगी बनता है तब परमात्मा से

विमुख रहता है। उसी शक्ति को परमात्मा की जान कर दृढ़ संकल्प द्वारा उपासना में लगता है तब परमात्मा के सम्मुख होता है।

जो भोग शक्ति है वही योग शक्ति हो जाती है।

भोगी अज्ञान में जो मानता है वही संसार है। योगी ज्ञान में जो नित्य सत्य को जानता है वही परमात्मा है।

अहंकार जो मान लेता है वही उसका ज्ञान होता है। उसी ज्ञान का अभिमान होता है।

अहंकार के पार होने पर ही सतचिदानन्द आत्मा परमात्मा का योग है। अहंकार की सीमा में भोग ही भोग है। कोई भी चाह अहंकार में ही होती है। वासना का भोगी अहंकार ही है।

यह गुरु निर्णय बहुत स्पष्ट समझने योग्य है -

चेतना ही वासनामय है और चेतना ही उपासनामय है।

हमें समझाया गया है कि इस समय तुमने वासना उत्पन्न नहीं की है तब उसे कैसे मिटा सकोगे इसलिए वासना को साक्षी रह कर देखो। तुम केवल वर्तमान में ठहरे रहो तब अभी वासना लुप्त हो जायेगी।

बन्धो ही वासना बन्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षणः।
वासनास्त्वं परित्यज्य मोक्षार्थित्वमपि त्यज।।

चित्त में अनेक प्रकार के भोगों की वासना ही पुरुष के बन्धन का कारण है। समग्र रूप से वासना के क्षय हो जाने का नाम मोक्ष है। जब तुम वासना का त्याग करोगे और मोक्ष की भी इच्छा न करोगे तब मोक्ष का आनन्द लाभ होगा।

वासना के कारण जितनी अधिक मन में वृत्ति बढ़ेगी उतनी अशान्ति बढ़ेगी और जितनी वृत्ति की निवृत्ति होती जायेगी उतनी शान्ति सुलभ होती जायेगी।

ज्ञानी के संग से ही यह ज्ञात होगा कि धन के लिए, भोग के लिए, तथा मान एवं नाम के लिए तुम जितना ही श्रम करोगे उतना कष्ट होगा। देह निर्वाह के लिए आवश्यकता तो बहुत कम ही होती है और वह देह की प्रारब्धानुसार सभी की पूर्ति होती ही रहती है परन्तु अहंकार की तृष्णा, कामना, वासना कभी पूरी होने वाली नहीं दीखती।

अभी या कभी जब तुम स्वस्थ, शान्त एवं स्वाधीनतापूर्वक प्रसन्न रहना चाहते हो तब वासना, कामना की पूर्ति का प्रयास छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में बुद्धि को स्थिर कर लेना ही आवश्यक है।

ज्ञान में दर्शन करने वाले बहुत सुन्दर निर्णय देते हैं कि भक्त परामात्मा में

प्रकट होता है और परमात्मा भक्त में प्रगट होता है। भक्त का परमात्मा से मिलन होता है, बिछोह नहीं होता। मिलन अनन्त है।

भक्त अपनी उपासना में कृपा की याचना नहीं करता वह तो कृपा को निरन्तर बरसते हुए देखता है।

वासना से सुनी हुई बुद्धि कृपा का अनुभव नहीं कर पाती। वासना और उपासना की चर्चा पढ़ते या सुनते वर्षो बीत जाते हैं परन्तु अहंकार अपना शत्रु ही बना रहता है वासना की ही पूर्ति करता रहता है। उपासना के लिये दृढ़ निश्चय एवं दृढ़ संकल्प नहीं कर पाता।

यो न निवसिनों नूनं सर्व धर्म परोऽपि सः।
सर्वज्ञोऽधिमितो बद्धः पञ्जरस्थो यथा खगः ।।

जो वासना से मुक्त नहीं है वह समस्त धर्मों का ज्ञाता क्यों न हो, वह सर्वज्ञ पण्डित ही क्यों न हो, वह उसी प्रकार से बद्ध है जैसे पिंजरे में पक्षी।

अविद्या के साथ रहने वाली वासना को क्षीण होने के उपाय बताये हैं-

(१) अधिक समय तक सतकथा श्रवण से,

(२) तत्व साक्षात् कराने वाले आत्मा के ज्ञान से ,

(३) प्रबल वैराग्य से,

(४) निष्काम तप से ,

(५) ध्यानाभ्यास की दृढ़ता से एवं

(६) चित्त की स्वरूप में तल्लीनता एवं एकाग्रता से वासनाक्षीण होती है।

ज्ञान में सुखासक्ति से मुक्ति

बुद्धिमान साधक के लिए बहुत सावधानी से अनित्य पदार्थों में नित्य चेतन तत्व का अनुभव करते रहना चाहिये। हमें यही बताया गया है कि प्रतीति झूठी है, इन्द्रियों के द्वारा होती हैं और अनुभूति सत्य की, स्वयं के द्वारा ज्ञान में होती है।

जिसे शब्द स्पर्श रूप रसादि विषयों की प्रतीति का सुखा स्वाद प्रिय है वह असत् एवं अनित्य पदार्थों की दासता से मुक्त नहीं हो पाता। अपना निरीक्षण करना चाहिये कि हम बँधे हैं या मुक्त हैं।

सुखासक्ति के कारण ही दान की महिमा, त्याग की महिमा, भजन की एवं सेवा की और भक्त की, भगवान की महिमा पढ़ सुनकर भी संग्रह, परिग्रह, दुराग्रह, असत्याग्रह का त्याग नहीं हो पाता।

सुखासक्ति के कारण ही राग द्वेष बढ़ता है। राग द्वेष के कारण अनेक पाप अपराध बनते हैं। रागी, द्वेषी, संग्रही, परिग्रही, व्यक्ति, भय से चिन्ता से सदा घिरा रहता है। अब देखना है कि हम रागी द्वेषी हैं या नहीं।

भय और लोभ के वशीभूत मनुष्य को कितने अधिक पाप करने पड़ते हैं। करोड़ों मनुष्यों को पापों का ज्ञान ही नहीं है। ऐसे अज्ञानी मनुष्य, जो नहीं मिला है वह मिल जाये ओर जो मिला है वह सुरक्षित रहे, इसी के पीछे सारा जीवन व्यतीत करते हैं।

अन्त में मृत्यु सब मिले हुए को व्यर्थ कर देती हे सब कुछ जगत में ही छूट जाता है लेकिन लोभ, मोह, अभिमान, तृष्णा, रागद्वेष, क्रोधादि, विकार, मन के साथ ही रहते हैं वही आगे जन्म लेने पर भीतर से प्रगट होते जाते हैं। किसी प्राणी को ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मोहादि की शिक्षा नहीं लेनी होती।

यह भी गुरु निर्णय है-

यदि तुम प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता को निष्काम सेवा में लगा दो और अप्राप्त की कामना छोड़ दो तब तो योग का द्वारा ही खुल जायेगा।

यदि तुम पूरे प्रेम से निश्चय कर लो कि मैं देह नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं नित्य चेतन स्वरूप हूँ, तब विनाशी का विस्मरण और अविनाशी आत्मा का स्मरण सहज

ही हो जाएगा। सुखासाक्ति के कारण ही विनाशी की विस्मृति नहीं हो पाती।

तुम उसे ही नहीं भूल पाते जिसे अपना मान लेते हो। आत्मीयता से निरन्तर स्मरण रहता है।

सुखासक्ति वश जहाँ भेदभाव है वहाँ कलह, क्रोध, कपट, छल, संघर्ष आदि सभी दोष साथ हो जाते हैं। प्रेम से भेदभाव को समाप्त कर दो। प्रेम तभी हो सकेगा जब बदले में कुछ न चाहोगे।

सुखासक्ति वश अज्ञान में तुमने विनाशी वस्तुओं को अपने में रख लिया है और उन्हीं देहादिक वस्तुओं में अपने को रख दिया है, इसीलिए अहंकार, मोही, लोभी, अभिमानी, कामी बन रहा है। अहंकार ही सुखा-सक्त होकर ज्ञान की नहीं सुनता है।

सन्त ने समझाया है कि जिस वस्तु को तुम अपने में रख लेते हो उसी से आसक्ति दृढ़ हो जाती है और जिस वस्तु में अपने को रख देते हो वही सत्य प्रतीत होने लगती है। ज्ञान में देखे बिना यह आसक्ति, यह भ्रम नहीं मिटता।

कहीं-कहीं पढ़ने में या सुनने में आता है कि तुम कितनी ही बार तीर्थ स्नान करों, कितना ही मन्दिरों में परिक्रमा, पूजा, आरती करते रहो कितने ही व्याख्यान देते रहो या सुनते रहो, कितने ही ग्रन्थ लिखते-लिखाते रहो, कितना ही हरे राम हरे कृष्ण माइक लगाकर चिल्लाते रहो, कितने ही रात्रि जागरण करते रहो या अखण्ड पाठ करते रहो इन कृत्यों से तुम्हारा अहंकार ही प्रसन्न होता रहेगा और यह सब करते-करते एक समय ऐसा आयेगा कि तुम करने लायक न रहोगे, शरीर वृद्ध हो जायेगा, शक्ति क्षीण हो जायेगी तब जो कुछ करके वाह-वाह करते थे या सुनते थे, वहीं पर एक दिन हाय-हाय करोगे या दूसरों के द्वारा सुनोगे कि हाय-हाय, बेचारा कुछ नहीं कर पाता, शक्ति घट गई इन्द्रियाँ जवाब दे रही हैं। यह पढ़ सुनकर एक बार मन में कहने वालों से लड़ने को जोश आता है या फिर विचार करने पर दीखता है कि सारी भाग दौड़ बेकार है, इतने दिन सब करके देखा परन्तु इन लोभ, मोह, काम, क्रोधादि, विकारों में से जो भी विकार प्रबल था वह अभी तक चल रहा है। शक्तिक्षीण होने पर कुछ कमी भले ही आई हो परन्तु मिटा नहीं। साधन भजन अवश्य कम हो गया।

तुम ज्ञान रूपी नौका को सर पर लिए हुए न घूमते रहो, उसमें बैठ कर काम

के सागर को पार कर जाओ।

यदि तुम्हें गुरु वाकयों को पढ़ने सुनने का सौभागय प्राप्त है तो गुरु ज्ञान द्वारा परिणाम को देखते हुए प्रीति को उसकी आसक्ति से बचाओ जिसे सुन-सुन कर अपना मान लिया है।

यदि आसक्ति से न बचा सके तब तो आसक्तिमयी प्रीति तुम्हें हिंसक बना देगी। सभी पाप कर्म आसक्ति में सरल हो जाते हैं। मानव समाज में जितने संघर्ष हैं, जितने छल कपट दम्भ कपट पाखण्ड और युद्ध हैं वह कहीं न कहीं आसक्ति के ही कारण हैं। आसक्ति परपदार्थ में अर्थात् अपने से भिन्न में ही हुआ करती है।

जब तक मनोमय देह में अहंकार अपनी पूर्ति चाहता है तब तक आसक्ति का त्याग सम्भव न होगा।

विज्ञानमय देह पर अधिकार प्राप्त होने पर प्रीति को निष्काम बनाने के दृढ़ संकल्प से आसक्तियों के त्याग की शक्ति आती है।

अहंकार ही रागी है, आसक्त है, अहंकार ही त्यागी होगा, अहंकार ही प्रीति को निष्काम देखेगा और शान्ति का रस लेगा।

अहंकार दरिद्र है, आनन्दमय लोक में इसकी पहुँच होती नहीं इसीलिए यह कुत्ते की भाँति हड्डी चूसते हुए अपने ही रक्त स्वाद में सुखास्वाद लेते हुए अन्य वस्तु को या व्यक्ति को सुखदाता मान कर आसक्त होता है।

गुरु ज्ञान में ही अहंकार को देखना सम्भव है। गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम के द्वारा गुरुत्व प्राप्त होता है।

गुरु में श्रद्धा प्रेम होना ही अधोमुखी प्रीति का ऊर्ध्वोम्मुखी होना है।

हमें सदगुरु समझा चुके हैः-

ज्ञान में क्षण-क्षण सरकते रहने वाले सुख को भोगते हुए मन को देखोगे तो आसक्ति से रहित हो सकते हो। और जो सुख प्राप्त नहीं होता उसकी चाह का त्याग कर सकते हो।

सांसारिक सुख भोग में तो पशु-पक्षी सभी ज्ञानी हैं। परमार्थ की सिद्धि के लिए तुम्हें निष्काम सेवा इन्द्रियों में संयम तथा दोषों का त्याग करना जब तक कठिन प्रतीत होता है तब तक अहंकार भोगी बना रहेगा।

तुम या तो अपने सभी संकल्प परम प्रभु को सौंप दो या फिर जगत के

सामने रख दो, तुम विनम्र हो जाओ।

धन, मान, भोगों की चाह पूर्ति के लिए ईश्वर चिन्तन आवश्यक नहीं हैं बल्कि विधिवत कर्म में श्रम आवश्यक है। अमेरिका आदि देश, भोग में इसीलिए आगे हैं क्योंकि श्रम करते हैं, ईश्वर चिन्तन की जरूरत नहीं समझते। रूस देश ईश्वर को मानता ही नहीं।

तुम्हें विरागी त्यागी होना है तब धन मान भोग से मन द्वारा विरक्त होकर परमात्मा का स्मरण चिन्तन अवश्य करो। दूर मान कर नहीं, प्रत्युत अपने भीतर आत्मा में जान कर करो।

यदि अविनाशी आत्मा का ज्ञान चाहते हो एवं परमात्मा का योगानुभव चाहते हो तब तो संसार में कुछ भी अपना न मानकर अकिंचन, अचाह होकर, प्रयत्न छोड़कर, अहंकृति का भोग छोड़कर अविनाशी का योग बोध प्राप्त कर सकते हो।

गुरुजन समझते हैं कि सर्व सद्गुण निधान परमेश्वर की कृपा से जो तुम्हें मानव देह मिली है उसके साथ अच्छा कुल मिला है, उसके साथ जो तुम्हें श्रद्धा मिली है, अन्य दैवी सम्पदा के कुछ तत्व घटित हो रहे हैं, अब ऐसा सुयोग पाकर लाभ, लोभ के पीछे, पद अधिकार के पीछे, भूमि धन मान के पीछे जीवन के महान लाभ को क्यों खो रहे हो?

एक सन्त ने सावधान किया है कि लाखों करोड़ों लोग अपने को खोए हुए, संसार में सब कुछ पाना चाहते हैं लेकिन उन्हें नहीं दीखता कि जीवन में कुछ भी भरपूर पा भी न सकेंगे और मृत्यु जो कुछ भी पाया है उसे भी व्यर्थ कर देगी।

इन वाक्यों को पढ़ने वालों तुम सावधान होकर समझ लो, तुम भी यही भूल तो नहीं कर रहे हो ? जो लाखों करते हुए मृत्यु के मुख में जा रहे हैं और करोड़ों धन के अभिमानी राजे महाराजे, सम्राट महारथी चले गए हैं।

बहुतों ने पुण्य प्रताप से बहुत कुछ पाया और गँवाया है तुम्हारे पास तो उसका कोई विशेष हिस्सा भी नहीं है।

जब तक तुम्हारा मन भजन में नहीं लगता तब तक भीतर देखना- तुम नाम तो भगवान का जपते हो परन्तु तुम्हारी प्रीति सांसारिक पदार्थों से है।

यदि तुम योग से प्राप्त सामर्थ्य को कामना की पूर्ति में अर्थात् भोग में व्यय न करो तो परमात्मा का बोध होने लगेगा।

हमें यह भी समझाया गया है कि विधिवत साधना की पूर्ति में ही व्यस्त रहोगे तब तो तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं होगा और मिथ्याभिमान बढ़ेगा। इसीलिए निषेधात्मक साधना को पूर्ण करो तभी चित्त शुद्ध होगा।

चित्त को तभी शुद्ध समझना जब कर्म में व्यस्त रहते हुए भी कहीं आसक्ति न हो और निवृत्ति के समय में चित्त चेतन स्वरूप में तल्लीन रहे।

जब चित्त शुद्ध हो जाता है तब प्रत्येक दशा में शान्ति, प्रसन्नता, निर्भयता सुरक्षित रहती है।

तुम ममता आसक्ति मे त्याग को कठिन मानकर टाल-मटोल न करो। समझ लो कि आसक्ति केवन मान लेने से ही पुष्ट हुई है इसी प्रकार ज्ञान में देख कर न मानने से मिट जाएगी। क्योंकि इसकी कोई सत्ता नहीं है।

गुरु-वाक्य

किसी सम्बन्धी से तुम्हारा उतना हित नहीं हो सकता, जितना हित तुम अपने संयत चित्त के द्वारा देखोगे। संयत चित्त के भीतर राग-द्वेष का प्रवेश नहीं होता। सदा शुद्ध चिन्तन करो चित्त अपने आप शान्त हो जाएगा।

जिससे तुम्हें कभी न कभी अलग होना ही पड़ेगा, जो तुम्हारे साथ सदा रह ही नहीं सकता, उसे तुम कदापि अपना न समझो बल्कि उसके संग रहते हुए ममता का त्याग कर दो।

ज्ञान में लोभ से मुक्ति

ज्ञान में देखने से ही अहंकार दिखाई देगा यह महा अभिमानी गज के समान संसार में अपने परिवार के साथ क्रीड़ा में मग्न है। गज (हाथी) की यह विशेषता होती है कि अपनी दृष्टि से अपने को देख ही नहीं पाता और जब स्नान करता है तब तत्काल ही धूल लपेट लेता है। अहंकार रूपी हाथी अति कामी होता है और परसन्तापी होता है। इस अहंकार रूपी हाथी को लोभ रूपी ग्राह से पराजित होता है तभी सबसे निराश होकर जो महान संरक्षक है, समर्थ है, उस प्रभु को पुकारता है, तभी लोभ रूपी ग्राह से रक्षा होती है, तब यह समर्पित होता है।

गुरु ज्ञान में देखना आवश्यक है कि हमारे भीतर भी अहंकार, लोग के वशीभूत तो नहीं हो रहा है।

सब तो नहीं देखेंगे। करोड़ों लोग लाभ के पीछे ही पड़े रहेंगे परन्तु हम सन्त की संगति में जाने वालों को अभी से सावधान होकर सोचना चाहिए कि लाखों सम्पत्तिशाली लोभियों की सम्पदा हीरे, जवाहरात यहीं पड़े रह गए और लोभी चले गए।

एक घर में अथवा राज्य-कोष में हीरे, जवाहरातों का ढेर कई पीढ़ियों से ज्यों का त्यों चला आ रहा है, वह धरती पर ही है, उसे हर पीढ़ी में कितने ही अपना मान कर मर गए पर साथ नहीं ले जा सके।

इस धरती में अपनी भूमि मानने के कारण हजारों युद्ध हो चुके और थोड़ी-थोड़ी भूमि के पीछे अगणित लड़ाइयों हो चुकी हैं अब भी हो रहीं हैं, आगे भी होती ही रहेंगी, परन्तु भूमि ज्यों की त्यों वैसी ही चल रही है और जब तक प्रलय न होगा तब तक ऐसी ही बनी रहेगी लेकिन इस भूमि को अपनी मानने वाले भूमि के साथ न रह पाये न आगे रह सकेंगे।

आश्चर्य यही है कि बुद्धि से समझ में आने पर भी मन में अपना मानने की आदत आसानी से नहीं छूटती। केवल ध्यान से देखने वाले ज्ञानी ही इस मोही मन से अथवा मानने वाली अहंकार से मुक्त हो पाते हैं।

ऐसे मुक्त ज्ञानी करोड़ो धर्म-परायण मनुष्यों में कोई बिरले ही होते है।

अहंकार, ज्ञानाभिमानी होने का मजा लेता रहता है परन्तु ज्ञान के द्वारा ज्ञानाभिमानी अहंकार को कोई सद्गुरु का उपासक ही देख पाता है।

गुरु वाक्य

जिन गुणों को अपने में बढ़ाना चाहते हो, उन्ही का चिन्तन करो। किसी की हानि न चाहो, दूसरों की वस्तु का लालच न करो, सांसारिक पदार्थों का महत्व न दो; निजात्मा में ही हार दशा में सन्तुष्ट रहो; यही शुद्ध जीवन है। इस प्रकार के जीवन में ही दिव्यता का अवतरण होता है।

यह भी ध्यान में रक्खो कि धैर्यवान् वीर पुरुष किसी भी शुभ ध्येय को पूर्ण किये बिना बीच में नहीं छोड़ते, क्योंकि ध्येय को पूर्ण कर लेना ही जीवन का सद्व्यय है।

जब तक तुम अपने कष्टों का कारण किसी दूसरे को मानते हो, तब तक तुम उन कष्टों के पार नहीं जा सकते। अपने पतन और पाप के लिये दूसरों को दोषी ठहराना भी एक भारी दोष हैं।

ज्ञान में अहंकार से मुक्ति

अहंकार के आगे संसार है पीछे परमात्मा है। परमात्मा में ही अहंकार है। परमात्मा में ही अहंकार की अपनी मानी हुई सृष्टि है, उसी सृष्टि को लेकर जी रहा है। अपनी सृष्टि में ही विचर रहा है।

अहंकार का जिधर ही मुख होता है उधर ही संसार का विस्तार दीखता है, परमात्मा ओझल ही रहा है। अहंकार को यह संसार और अपनी ही सृष्टि ही दीखती है, लेकिन जिससे संसार और सृष्टि को जीवन मिल रहा है वह आधार आश्रय नहीं दीख रहा है।

श्रुति शास्त्र में निर्णय दिया है कि अनादि अनन्त अखण्ड परमात्मा में अव्यक्त प्रकृति है, उस अव्यक्त प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्व से बुद्धि, बुद्धितत्व में अहं का स्फुरण, अहं का स्फुरण में आकाश, वायु आदि पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इन्हीं पञ्चभूतों से बने हुए पदार्थों के संग से अहं को आकार मिलता है। अहं जिस नाम रुपमय पदार्थ से मिलकर मेरा स्वीकार कर लेता है वही अहंकार का रुप हो जाता है। अहं के आकारों को पार करते ही जो है सो आत्मा है।

हमें समझाया गया है कि यदि तुम बन्धनों से मुक्त होना चाहते हो तो अहंकार के पार अविनाशी नित्य ज्ञान स्वरूप में बुद्धि को स्थिर करो।

यदि तुम अखण्ड आनन्द चाहते हो तो अहंकार के पार असीम प्रेम में ही मन को लगा दो।

यदि तुम शाश्वत शान्ति एवं विश्राम चाहते हो अभी अहंकार के पार अनन्त शक्ति स्वरूप चेतना में ही अहंकार को सिन्धु में बिन्दु की तहर गिरते हुए अनुभव करो।

बहुत सरल युक्ति तो यही है कि तुम मुक्ति चाहो ही नहीं आनन्द चाहो ही नहीं। विश्राम चाहो ही नहीं।

चाह का त्याग करते ही तुम मुक्त ही हो, आनन्द ही हो विश्राम में शान्त ही हो। मूढ़ व्यक्ति कभी शान्त नहीं हो पाते क्योंकि वे कामना करते हैं।

यदि बुद्धि मन्द होने के कारण, मूढ़ता के कारण, अहंकार की कठोरता के कारण यह गुरु निर्देश समझ में नही आ रहा है तब तुम आनन्द के लिये, मुक्ति के लिए शान्ति के लिए, घर परिवार न छोड़ो, मोह अवश्य छोड़ दो। तुम धन सम्पत्ति न छोड़ो लोभ अवश्य छोड़ दो।

पद अधिकार व्यापार न छोड़ो लेकिन अभिमान अवश्य छोड़ दो। यह दोष छोड़ने के लिये कुछ भी अपना न मानो, अपना न मानना ही त्याग है।

तुम बाहर से कोई त्याग न करो लेकिन कर्ताभाव अवश्य छोड़ दो। अहंकृति के भोक्ता न बने रहो।

हमें यह भी समझाया है कि जो प्रत्यक्ष दीख रहा है यही सत्य लगता है परन्तु यह सत्य नहीं है। जो देख रहा है वह ज्ञान स्वरूप तुम्हीं सत्य हो अपने को जानो।

मन ही संसारमय बन रहा है। मन ही अहंकार का रथ है। इसे ही मनोरथ कहते हैं। अहंकार मनोरथी बन कर संसार की यात्रा कर रहा है। जो सत् स्वरूप है वह अहंकार के पीछे छिप रहा है इसीलिए अहंकार के पीछे अहंकार के प्रकाशक को जानो।

अहंकार ही सुखार्थी, धनार्थी, विद्यार्थी, धर्मार्थी, ध्यानार्थी बनता है। जो कुछ बनता है, बनना चाहता है, होना चाहता है वह अहंकार ही है।

अभी तक तुम क्या-क्या बन चुके हो, अब देखो कि क्या बनने का अथवा क्या होने का संकल्प है। क्या कमी दीखती है। जो कोई तुम्हें अपने से अधिक आगे दीखेगा वही तुम होना चाहोगे। बाल्यकाल से बनना आरम्भ हुआ था अब देखो कि इस समय समाज के बीच में तुम्हें लोग क्या समझ रहे हैं। क्या मान रहे हैं और अब तुम सब के सामने क्या होना चाहते हो।

चपरासी से प्रधानमन्त्री तक, कंगाल से करोड़पती तक, मूर्ख से शास्त्रार्थमहारथी तक, शूद्र से ब्राह्मण तक, दुर्बल से महा बलवान तक, गृहस्थ से सन्यास तक, महा हिन्सक से अहिन्सक तक, कौवा से हंस तक अहंकार ही यात्रा करता है।

एक महापुरुष कह रहे थे परमात्मा ने तुम्हें अहंकार शून्य बनाया है लेकिन अहंकार अर्थात् अहं के सारे आकार तुम्हारी स्वीकृति द्वारा निर्मित हैं। इसीलिये जो तुम्हारे द्वारा बना है या हुआ है वह तो टूटेगा, छूटेगा, बिखरेगा किन्तु परमात्मा का जो कुछ है वह सदा रहेगा।

अहंकार सदा न रहेगा आत्मा सदा रहेगा। अहंकार जब जायेगा। तभी परमात्मा आया हुआ अर्थात् जहाँ का तहाँ विद्यमान अनुभूत होगा।

सदगुरु कहते हैं कि सावधान होकर समझ लो, इस धरती में उसी को खोजने आये हो जो तुम्हें मिला ही हुआ है। अब तुम्हें होश आने पर उसी नित्य प्राप्त से परिचित होना है जो कि तुम सदा से हो और कुछ न बनना है, न कुछ होना है। तुम नित्य, बोध स्वरूप हो, तुम आत्मा ही हो, तुम चेतना के श्रोत हो, फैलते हुए ज्ञान प्रकाश के श्रोत हो, तुम बिखरती हुई प्रीति के अनन्त श्रोत हो।
जनक जी को सदगुरु समझा चुके है :-

सर्व भूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
विज्ञाय निरहंकारो निर्मम त्वं सुखी भव।।

ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को और सबभूतो को आत्मा में जान कर अहंकार रहित और ममता रहित होकर तुम सुखी हो जाओ। सदगुरु कहते है हे सौम्य, हे प्रिय श्रद्धा करो श्रद्धा करो, मोह में न रहो। तुम ज्ञान स्वरूप भगवानात्मा प्रकृति से परे हो।

न त्वं देहो न ते देहो भोक्ता कर्ता न वा भवान्।
चिद्रूपोऽसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर।।

विदेह जनक को समझाया है कि तुम देह नहीं हो, तुम्हारी यह देह नहीं है, और तुम भोक्ता नहीं हो तुम कर्ता नहीं हो, तुम नित्य चेतन स्वरूप हो साक्षी हो किसी की अपेक्षा इच्छा न रख कर तुम सुख पूर्वक विचरो।

विषयों से वैराग्य हो जाना ही मोक्ष है विषयासक्ति ही बंधन है इतना जान लो यह विज्ञान है। फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो।

रागद्वेषौ मनो धर्मों न मनस्ते कदाचन।
निर्विकल्पोऽसि बोधात्मा निर्विकारः सुखी भव।।

राग द्वेष मन के धर्म है, तेरे नहीं है। मन भी तेरा नहीं है। तू विकल्प रहित, विकार रहित बोध स्वरूप है।

हमें यह भी समझाया गया है कि मूढ़ता वश तुम मन की मानों नहीं साथ ही मन से लड़ो भी नहीं, क्योंकि मन तुम्हारा नहीं है तुम उसे देखते रहो तभी मन के पार हो सकोगे। मन से नाता तोड़कर उससे जोड़ो जिससे मन को शक्ति मिलती है जिससे जिसमें ही मति की गति होती है। वही सर्व साक्षी है।

हमें यह भी समझाया गया है कि जब तक तुम सुखी हो तब तक हिंसा नहीं कर सकते। जब सुख के लिए दुखी हो जावोगे, तुम्हें सुख में कोई बाधक दीखने लगेगा वहीं से क्रोध हिंसा का आरम्भ हो जायेगा।

एक सन्त समझा रहे थे कि देखो वृक्षों में ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, स्पर्धा नहीं है क्योंकि वृक्षों में किसी जैसा होने का ज्ञान नहीं है। बल्कि यदि कोई वृक्ष किसी वृक्ष के कक्ष में उग जाता है तो वह वृक्ष स्वयं मिटकर उस वृक्ष को जीवन दे देता है। वृक्ष मे बढ़ते हुए वृक्ष देखे जाते हैं।

स्वतन्त्र आनन्द के लिए कभी ऐसा न समझ लेना कि यह परिवार धन, भूमि, भवन रोक रहा है। वास्तव में बाहर की कोई वस्तु आनन्द की अनुभूति में बाधक नहीं है। तुम्हारी मूढ़ता, मूर्खता, मान्यता, बृद्धि की जड़ता और अहं के आकार ही बाधक है।

यह गुरु निर्देश है कि तुम मूढ़ता छोड़कर ज्ञान में जागो और अहंकार को पार करो तब तुम्हें माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्रादि, परिवार में परमात्मा का अनुभव

होगा।

अहंकार के पार होते ही प्रेमी अपने प्रेमास्पद को ही सर्वमय देखते हैं।

जड़ चेतन जग जीवन जत, सकल राम मय जानि।
सब के पद बन्दन करउं, सदा जोरि युग पानि।।
'उमा जो रामचरण रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगतं, का सन करहिं विरोध।।

'धन्यो विज्ञान मात्रेण'

उस विज्ञान को धन्य है जिसके द्वारा बोध मात्र से परमात्मा प्राप्त ही दीखता है। यहाँ अभ्यास भी नहीं केवल बोध मात्र से ही प्राप्त की प्राप्ति होती है।

ज्ञान में तत्व के निश्चय मात्र से ही ज्ञानी कृत-कृत्य हो जाता है।

नित्य प्राप्त की अनुभूति के लिये कुछ करना नहीं है केवल शान्त होना है, अप्राप्त की प्राप्ति के लिए अशान्त होकर कुछ करना ही होता है।

चूँकि अहंकार को करने का अभ्यास हो रहा है। मन कुछ किये बिना जी ही नहीं सकता। इसीलिये मन के पार अहंकार पार होने के लिये चाहे कुछ करो परमात्मा की प्राप्ति के लिये कुछ करना ही विमुख रहना है।

मन के पार अहंकार के पार जाने के लिए इन्हें देखना है। इन्हें ओढ़े रहना ही इनके पार जाने में बाधा है। यदि मन की मानते रहें अथवा मन से लड़ते रहें तब मन के पार नहीं हो सकोगे।

हमें दिखाया गया है कि तुम अपने को देखो अपने साथियों को देखो, जो वेद शास्त्र, धर्म-ग्रन्थ, सन्त महात्मा को नहीं मानते, जो ईश्वर को देवी-देवताओं को नहीं मानते उन करोड़ो लोगों को न देखो तुम्हारी दृष्टि जहाँ तक देख पाती है उन सैकड़ों हजारों को देखो तो स्पष्ट दीखेगा कि मनुष्यों के भीतर मन मे जो मोह, ममता, लोभ एवं काम है अथवा अहंकार के साथ जो अभिमान है यह सब दोष अथवा इनमें से जिस किसी दोष की प्रधानता है वह दोष अहंकार के साथ, पूजा, पाठ, जप, तप, कीर्तन, तीर्थ स्थान या तीर्थ सेवा करते हुए बने ही रहते हैं। यह काम क्रोध, लोभ, मोहादि, दोष दुर्गुण, भगवान, भगवती के मन्दिरों से नहीं डरते। यह दोष दुर्गुण, शिष्य बना जाने पर गुरु की सेवा करते हुए भीतर साथ-साथ चलते रहते हैं और कामना पूर्ति का अवसर आते ही सारे सद्‌भावों एवं सद्‌गुणों की पीछे हटाकर आगे आ जाते हैं।

इन्हीं काम, लोभ, अभिमान के पीछे दम्भ पाखण्ड तो अपने रचयिता ब्रह्मा से भी नहीं डरते उनके सामने भी इनका आसन अलग ही रहा करता है।

काम की पूर्ति के लिए, लोभ लाभ की सिद्धि के लिए, छल कपट बहुत है

मनोहर वेश बनाकर वाकपटुता के द्वारा ज्ञानी गुरुजनों को भी धोखा देने में बड़ी वीरता का परिचय देते हैं।

श्रद्धा पूर्वक सुनते हुए गुरु ज्ञान में तुम अभी देखो कि लाखों करोड़ों, मनुष्य अहंकार को तृप्त करने के लिए अनेक कर्म करते हैं। वस्त्रों द्वारा, आभूषणों द्वारा श्रृंगार, फैशन द्वारा अहंकार को ही तृप्त करना चाहते हैं दूसरे शरीर में क्या सजावट है, क्या बनावट है, पैर से सर तक बहुत पैनी दृष्टि से देखते हैं।

अहंकार को तृप्त करने के लिए ही कोठी बंगलों में फर्नीचार तथा लैम्प, रेडियो टेलीविजन एवं दुकान की बनावट, सजावट में परस्पर होड़ लगी रहती हैं। पड़ोसी आगे बढ़ जाये यह सह्य नहीं होता।

इस प्रकार के अहंकार कभी-कभी सन्त संग में आकर धन के बल पर सर्वोपरि स्थान प्राप्त करना चाहते हैं और साधु महात्मा द्वारा उन्हें मिलता भी है, मिलना भी चाहिए। जब वे उदारता पूर्वक धन देते हैं तब महात्मा को भी उन्हें मान देने में उदारता का परिचय देना ही चाहिये।

ऐसे अहंकार की चर्चा इसिलए की जाती है कि तुम श्रद्धावान हो तुम अपनी ओर देखो और ज्ञान में देखते हुए अहंकार की दरिद्रता को पहिचान कर स्वयं को बचाओ।

यदि सन्त संग में आकर श्रद्धालु होकर तुम भी उन्ही असत् संगीजनों की नकल करते हो तब तो तुम्हारे भीतर सन्त संग का प्रभाव नहीं उतर सकेगा।

अनेक अश्रद्धालु अहंकारियों के साथ रहते हुए तुम तो सौभाग्य से श्रद्धावान हो। विचारपूर्वक मध्य मार्ग चुनो और जितनी सजावट बनावट से लोगों को प्रसन्नता हो सन्तोष हो, द्वेष न हो, उतनी का ही पक्ष लो। प्रतिस्पर्धा से अहंकार को मान और नाम से तृप्त होने का प्रयत्न छोड़ दो।

तुम दूसरों को अवश्य ही मान का दान, तन से, वाणी से अथवा जहाँ जैसा उचित हो वहाँ वैसे ही देते रहो।

याद रखना?तुम किसी से कुछ पाने की अपेक्षा रक्खोगे तो दुखी अशान्त होना पड़ेगा। तुम अपने प्रेम में, अपने हृदय की उदारता, सरलता, नम्रता, सहिष्णुता से सदा प्रसन्न रहो, सन्तुष्ट रहो। परन्तु अवसर पर स्मरण नहीं रहता। पढ़ते-सुनते समय तो बहुत आसान ही लगता है लेकिन पूर्वाभ्यास इतना अधिक दृढ़ है जिसके कारण यह ज्ञानाचरण विस्मरण हो जाता है और अज्ञान में अहंकार आचरित होता है।

बह्मचर्य भूल जाता है अहंकार प्रगट हो जाता है, इसीलिये भगवान ने जो बताया है उसी के अनुसार परहितकारी धर्माचरण में दृढ़ रहो, परमात्मा की शक्ति

निरन्तर तुम्हारे साथ है।

अहंकार तो कर्ता है भोक्ता है अहंकार सभी वस्तु के धर्मों का आश्रय लेता है। भगवान कहते हैं तुम देह धर्म, इन्द्रिय धर्म, मन का धर्म, अथवा प्रत्येक विनाशी वस्तुओं का धर्म या अन्य प्रचलित धर्मों का आश्रय छोड़कर मुझ आत्मा परमात्मा के नित्य आश्रय को स्वीकार कर लो (मामेकं शरणं ब्रज) तब सभी पापों से मुक्त हो जाओगे।

परमात्मा आत्मा से विमुख होना ही तो प्रथम पाप है जहाँ से पतन आरम्भ होता है वहीं से पाप का आरम्भ होता है। अज्ञान में अहंकार की भूमि में पतन है। ज्ञान द्वारा अहंकार को पार कर जाना परम उत्थान है और महान पुण्योदय है।

नित्य सत्-चेतन आत्मा को न जानना और अज्ञान में जो स्वयं तुम नहीं हो और जो तुम्हारी नहीं है, उस ही मैं मानते रहना, मेरा मानते रहना सर्वोपरि पाप है और यह पाप अहंकार के पार नहीं रहता।

पाप से घिरा अहंकार तो इस प्रकार के गुरु सन्देश को सुनेगा नहीं जो यह गुरु सन्देश पढ़ रहे हैं वह अवश्य ही विशेष पुण्यों के धनी है।

तुम यदि भगवान के ज्ञान को सुनते हो, इस ज्ञान में देखते हो और भगवान के इस ज्ञान के उपासक होकर रहते हो, तब तो तुम इस सर्वोपरि ज्ञान यज्ञ के द्वारा परमात्मा को प्राप्त हो सकते हो।

तुम सावधान होकर अपने भीतर मोही, लोभी, अहंकार को देखो यह दूसरों से जब अपने प्रति अपमान के शब्द सुनता है, कठोर वाक्य सुनता है तब तो खूब सम्हाल कर याद रखता है लेकिन गुरु वाक्य सुनकर नहीं सम्हालता, भूल जाता है। मोही, अभिमानी जनों के वाक्य अनेक वर्ष तक स्मरण रखता है।

अहंकार को सदा सुखी रखना संसार में किसी के लिये आज तक सम्भव नहीं हो सका लेकिन आश्चर्य है हम सभी लोग परस्पर अहंकार को सुखी रखने के लिये जीवन भर प्रयत्न करते रहते हैं। और मूढ़ता वश परस्पर मानते भी है कि हमें अमुख वस्तु से और व्यक्ति से ही सुख मिल रहा है। आगे भी मिलते रहने की आशा और विश्वास किये जा रहे हैं। ठहर कर देखो। आप तो ऐसी भूल नहीं दुहरा रहे हो?

इस गुरु वाक्य पर ध्यान दो कि तुम अहंकार को सदा सुखी नहीं रख सकते और जो अहंकार को पार कर गया है उसे संसार दुःखी नहीं कर सकता। असम्भव है।

एक महापुरुष सुना रहे थे कि शुद्ध अहंकार देखना हो तो शास्त्राभिमानी पण्डितों में देखो। जात्याभिमानी ब्राह्मणों में देखों। धन, मान, भोग चाहने वाले

साधुओं में उपदेशकों एवं व्यासों में देखो। अन्य सभी लोगों के अहंकार में मिलावट है लेकिन ज्ञानाभिमानी पण्डितों के तथा जात्याभिमानी ब्राह्मणों के एवं त्यागाभिमानी वेषधारी साधु सन्यासियों के अहंकार में मिलावट नहीं है, शुद्ध अहंकार है, जो शरीर छूटने तक बना ही रहता है।

सन्त सावधान करते है :-

ज्ञान कथा सीखी घनी प्रश्न करत अति गूढ़।
नारायण बिन धारणा बृथा बकत है मूढ़।।
बात बनावत ज्ञान की भोजन को ललचात।
नारायण कलिकाल के कौतुक कहे न जात।।
जब चेतो तब ही भला मोह नींद सों जाग।
सन्तों की संगति मिले सहजो ऊँचे भाग।।

एक विचित्र बात है कि लोभी मोही अभिमानी सम्बन्धी यदि हमारी कमी दिखातें है तब बहुत दुख होता है लेकिन सन्त गुरुजन जब सद्ज्ञान तथा वैराग्य, त्याग एवं निष्काम प्रेम की कमी दिखाते हैं और दोष बताते हैं तब कोई दुख नहीं होता बल्कि हंसते हुए स्वीकार भी कर लेते हैं कि हम महा मूढ़ हैं, अज्ञानी हैं, पापी हैं, 'पतित' है, माया मोह, में फँसे हैं - इस प्रकार अपने को दीन-हीन भी मान लेते हैं परन्तु अपने परस्पर सम्बन्धियों के मध्य दीन-हीन अज्ञानी पापी कहना पसन्द नहीं करते।

यह अहंकार धन मान भोग से सन्तुष्ट, तृप्त नहीं होता लेकिन संत संगति से, अपनी मान्यता अनुसार पूजा, पाठ, जप, साधना से सन्तुष्ट रहता है। भोगी अहंकार को दैवी सम्पदा की कमी का दुख नहीं होता। सांसारिक पदार्थों की कमी का दुख होता है।

यदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बन्धनं तदा।
मत्वेति हेलया किंचिन्मा गृहणा विमुञ्च मा।

जब मैं हूँ तभी बन्ध है जब मैं अर्थात् अहंकार नहीं है तभी मोक्ष है। इस प्रकार समझ कर न कुछ ग्रहण करो न त्याग की चिन्ता करो। (अष्टावक्र)

जब तक दुरात्मा अहंकार से सम्बन्ध है तब तक मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

संसार में वस्तुओं व्यक्तियों से सुखोपभोग की आशा महापाश है इसका त्यागना जब तक कठिन लगता है तब तक षष्टशास्त्र का विद्वान भी मुक्ति का अधिकारी नहीं होता।

कर्मों का कर्ता बने रहने तक जीव बन्धन से मुक्त नहीं होता इसीलिये भगवान ने कर्माभिमानी अहंकार को विमूढ़ कहा है।

आत्मा का ज्ञान होने पर मुक्ति के लिये किसी सहारे की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि बाहर शरीर बंधा है तब तो कोई दूसरा बन्धन खोल सकता है लेकिन जो अपने अज्ञान से आसक्ति ममता कामना से बंधा है उसे कोई दूसरा मुक्त नहीं कर सकता। स्वयं ही गुरु ज्ञान से मुक्त हो सकता है।

जिसके भीतर होकर अहंकार अपना काम करता है उसे कोष कहते हैं। जो कोष को अपना रूप समझता है उसे पुरुष कहते हैं।

अन्नमय कोष का अर्थात् शरीर का अभिमान अहंकार ही अन्नमय पुरुष कहा जाता है। प्राणमय कोष का अभिमानी अहंकार प्राणमय पुरुष कहा जाता है। मनोमय कोष साथ मिलकर 'मैं मेरा' कहने वाला अहंकार मनोमय पुरुष कहा जाता है इसी प्रकार विज्ञानमय कोष के अभिमानी अहंकार को विज्ञानमय पुरुष कहा जाता है। विज्ञान कोष के ऊपर आनन्दमय कोष है।

आनन्दमय कोष के ऊपर आत्मा है। प्रत्येक कोष में आत्मा की चेतना प्रगट हो रही है। उस चेतना के सहारे ही अहंकार कर्ता भोक्ता बन रहा है।

विज्ञानमय कोष के पीछे आनन्दमय कोष में पहुँचना किसी तत्ववेत्ता महात्मा के लिये ही सम्भव होता है। अभी तो हम अहं के आकारों की सीमा को ही नहीं देख पाते फिर भी कृपा से सभी कुछ सरल हो जाता है।

जगतगुरु शंकाराचार्य का वचन है कि जो शास्त्र अध्ययन नहीं करता वह विद्या पढ़कर भी मूर्ख ही रहता है और जो शास्त्र का विद्वान होकर मोही, लोभी, अभिमानी है वह तो महामूर्ख है।

धनमद, कुलमद, बलमद, पदाधिकार का मद, रूपमद से मूर्छित बुद्धि वाले मूर्ख तो अज्ञानी होने के कारण दया के पात्र हैं लेकिन जो विद्या मद से मूर्छित बुद्धिमान विद्वान हैं जिनका मन, तन में या धन में, भूमि भवन में, अटक गया है ऐसे विद्वान ज्ञानी पाण्डित्य के अभिमानी जनों पर भला कौन दया करेगा? क्योंकि अनेक जन लोक धर्म पर आस्था रखने वाले इन्ही से दया आशीर्वाद माँगते रहते हैं।

अब देखना है इन्ही अटकने वाले विद्वानों तथा ज्ञानाभिमानीजनों की भीड़ में हम भी हैं या नहीं? हमारा यह मन, इस तन में, या धन में, या सम्बन्धित प्रिय जनों में नहीं अटका है- ऐसा तभी कह सकते हैं जब प्रारब्धवशात् अचानक होने वाले वियोग से, या हो जाने वाली हानि से अथवा किसी प्रकार की प्रतिकूलता से हम व्यथित न होकर समस्थित रहते हों।

समस्थित रहना ही पाण्डित्य का अथवा आत्मज्ञानी होने की सिद्धि है। जड़ चेतन जब अलग-अलग दीखते हैं जड़ वस्तु के परिवर्तन का तथा आकार विनाश का प्रभाव नहीं पड़ता तब परम हंसावस्था है। राग द्वेष की पूर्ण निवृत्ति भगवद् भक्ति प्रेम से या आत्मरति से ही होती है। केवल विवेक से नहीं होती।

तुम अपनी मान्यता के अनुसार यह तो परिचय देते हो कि मैं अमुक जाति का हूँ, अमुक वर्ण का हूँ, अमुक नाम वाला हूँ, यह मैं हूँ और 'यह मेरा है।'

क्या कभी यह भी परिचय देते हो कि मैं भगवान का अंश हूँ? क्योंकि भगवान ने कहा है कि जीवात्मा मेरा अंश है?

क्या गुरु वाक्य सुनकर अब यह याद रहेगा कि मैं चेतन आत्मा हूँ मैं अविनाशी ज्ञान स्वरूप हूँ? क्या यह समझ में आ रहा है? कि मैं सच्चिदानन्द हूँ? में देह नही हूँ, जड़ नही हूँ। मै नित्य शुद्ध बुद्ध निरंजन हूँ। जो अहं तत्व देह से जाति से अथवा किसी वस्तु से मिलकर उसीमय बन जाता है। वही ब्रह्ममय भी हो सकता है। इसीलिये अनेक साधक सोहं, शिवोहं, अहं ब्रह्मास्मि आदि मन्त्रों का मनन चिन्तन करते हैं।

आत्मा परमात्मा का बोध होने पर निर्द्वन्द भजन हो पाता है। मोह तो सन्त के संग से सद्विचार द्वारा दूर हो जाता है परन्तु संयोग, वियोग, मानापमान, सुख-दुख आदि द्वन्दों का प्रभाव पड़ता रहता है वह निरन्तर ज्ञाननिष्ठा द्वारा आत्मस्थ एवं निरन्तर स्वस्थ रहने पर ही निवृत्त होता है।

एक सन्त ने बताया कि जब तक तुम कुछ बने हो, बनते-बनते ब्रह्म बन सकते हो परन्तु परमात्मा को नहीं जान सकते। आत्मा का ज्ञान भी किसी को नहीं होता क्योंकि जो जाना जाता है वह दृश्य होता है, आत्मा तो अनुभव मात्र है। आत्मा परमात्मा दृश्य नहीं है। हमें समझाया गया है कि सत्य चेतन आत्मा को खोजना नहीं प्रत्युत पहिचानना है। इसे पाना नहीं है, जान लेना है।

दर्शन

ज्ञान अद्वय जब प्रकाशित वही भगवद् अवतरण है।
वहीं सदगुरु अवतरण है।।

सभी दर्शन सुलभ होता शुद्ध जब अन्तःकरण है।
आत्मा आनन्दमय है सर्वमय है नित्य चेतन।
अहंकार विमूढ़ दुख सुख भोक्ता है संग तन मन।
प्रेम में गलता पिघलता जब कि श्रद्धायुत शरण है।
मैं ही खुद खोया हुआ था खोज में ही जब तुला था।
अनदिखा आनन्द का यह द्वार तो सब दिन खुला था।
यहाँ मिटता ज्ञान में अज्ञान का जो आवरण है।।

कौन हमको जानता था शरण में आने के पहले।
अब जमाना जानता है शक्ल दिखलाने के पहले।
बिना अपने कुछ किये ही हो रहा पोषण भरण है।।

जो कहीं भी पा न सकते वह यहाँ पर पा रहे हैं।
जो कहीं भी गा न सकते वह यहाँ पर गा रहे हैं।
जो कहीं भी बन न सकता बन रहा वह आचरण है।।
जब कभी ममता मिटे तब अहं के आकार टूटें।
इसी को मुक्ति कहते मान्यता के बन्ध छूटे।
यहीं परम स्वतंत्रता है यही ज्ञानामृत झरण है।।

यहाँ आने पर ही जाना कहीं कुछ पाना नहीं है।
स्वयं में ही प्राप्त प्रभु है अंत कहीं जाना नहीं है।
'पथिक' का विश्राम धाम स्वज्ञान ही सब दुख हरण हैं।।